आदर्श पत्नी

[illegible]

आदर्श पत्नी

(पतियों और [illegible] पत्नियों के लिये)

लेखक

श्रीरामनारायण 'यादवेंदु'

बी० ए०, एल्-एल्० बी०

(दाम्पत्य जीवन के रचयिता)

भूमिका-लेखक

श्रीगणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र'

—:o:—

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, गौतम बुद्ध-मार्ग

लखनऊ

चतुर्थावृत्ति

सं० २०१२ वि०] [मूल्य २)

आशा है, ऐसे वीर स्त्री-पुरुषों को आप अपने यहाँ के लिये ढूँढ निकालेंगे, और हमें सूचित करेंगे। हम उन्हें अपने यहाँ सब काम सिखलाकर फिर आपके यहाँ ही प्रचार करने को भेजेंगे। १०-१० ज़िले और स्टेटों में यदि एक-एक महानुभाव ही काम करें, तो केवल ४० वीर पुरुषों की भारतवर्ष-भर के लिये आवश्यकता पड़ेगी। क्या ४० करोड़ जन-संख्यावाले देश में ४० राष्ट्र-भाषा-प्रेमी कर्मवीर कार्यकर्ता नहीं मिल सकते?

क्या आप हमारी यह सहायता करेंगे?

आपकी सहायता के इच्छुक—

कवि-कुटीर, लखनऊ
होली, २००१

दुलारेलाल
सावित्री दुलारेलाल

आवश्यक निवेदन

हैदराबाद के निज़ाम भूपाल, रामपुर आदि के नवाब उर्दू के लिये लाखों रुपए ख़र्च कर रहे हैं। पर हमारे हिंदू-नरेश, ताल्लुक़दार, ज़मींदार और रईस गाढ़ी नींद में सोते रहे हैं—केवल ओरछा-नरेश, स्व० बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बिड़ला-बंधु आदि कुछ महानुभावों को छोड़कर। मुस्लिम लीग ने हज़ारों उर्दू-पुस्तकालय देश-भर में खुलवाए हैं। पर हिंदू-सभा ने शायद ही कहीं कोई हिंदी-पुस्तकालय खुलवाया हो। हिंदू-सभा के पद-लोलुप कार्यकर्ता इस ओर से बिलकुल उदासीन हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना राष्ट्र-भाषा हिंदी की उन्नति के देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। जो हो, हमारे यहाँ हिंदी-भाषा भाषी करोड़पति हज़ारों और लखपती लाखों सज्जन हैं। उन्हें अपना कर्तव्य सुझाने के लिये कर्मवीर कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। काँग्रेस, हिंदू-महासभा, आर्यसमाज, सनातनधर्म-सभा, रामायण-मंडल, गीता मंडल, महंत-मंडल, क्षत्रिय-महासभा, ब्राह्मण-महासभा, कायस्थ महासभा आदि सभी सभाओं और मंडलों को जुटकर हमारी १,००,००० लाइब्रेरी खुलवाने की योजना को सफल बनाना चाहिए। यह योजना हमसे मँगा लीजिए। केवल ।/) महीने का ख़र्च है।

हमारे पढ़े-लिखे सब बंगाली, गुजराती, मराठी भाई अपने घर में अवश्य अपनी मातृ-भाषा की अच्छी-अच्छी पुस्तकें रखते हैं। वही भावना हिंदी-भाषी प्रांतों में फैलाने के लिये उद्योगी स्त्री-पुरुषों की तुरंत आवश्यकता है। हमें आप २-४ ही ऐसे व्यक्ति दीजिए, जिनमें Missionary Spirit हो, और जो हिंदी-सेवा में अपना जीवन दे सकें, साथ ही कुछ कमाएँ भी।

कवि-कुटीर, लखनऊ
होली, २००२

दुलारेलाल
सावित्री दुलारेलाल

वक्तव्य

(द्वितीयावृत्ति पर)

होनेवाली पत्नियों के लिये खास तौर से यह पुस्तक निकाली गई है। आशा है, वे इससे लाभ उठाएँगी।

हिंदी-संसार ने इस पुस्तक का विशेष आदर किया, जिससे ८ वर्ष के अंदर ही इसका प्रथम संस्करण बिक गया। काग़ज़ की महँगी के कारण अब की बार इसकी बहुत कम प्रतियाँ छापी गई हैं। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

कवि-कुटीर
वसंत-पंचमी, १९९९ — दुलारेलाल

वक्तव्य

(तृतीयावृत्ति पर)

इस पुस्तक का विशेष प्रचार होने के कारण हमें इसके कई संस्करण निकालने पड़े हैं। यह आनंद की बात है। आशा है, प्रत्येक नव-विवाहिता कन्या इसे पढ़कर 'आदर्श पत्नी' बनने की चेष्टा करेगी। विवाह के अवसर पर नववधू को यह पुस्तक लोग भेंट में देते हैं, यह खुशी की बात है।

यह पुस्तक हमने बढ़िया बैंक-पेपर पर छापी है, जिसका मूल्य बाजार में बहुत बढ़ा हुआ है। मूल्य उसे देखते कम ही रक्खा है। आशा है, इसे लोग पसंद करेंगे।

कवि-कुटीर
वसंत-पचमी, २००१ — दुलारेलाल

भूमिका

सृष्टि के आरंभ में मनुष्य को गार्हस्थ्य विज्ञान की आवश्यकता न थी, क्योंकि उस युग में मानव-समाज में पूर्ण स्वच्छंदता का साम्राज्य था, किसी भी प्रकार का वैधानिक नियंत्रण न था। उन दिनों गार्हस्थ्य विज्ञान ही क्या, किसी भी विज्ञान की उत्पत्ति मानव-मस्तिष्क में नहीं हुई थी। जो भारतीय समाज-व्यवस्था, धर्म-व्यवस्था प्रभृति किसी युग में यहाँ अपनी उन्नति के अत्युन्नत शिखर पर सुखासीन थीं और जिन्हें आज हम जर्जरित रूप में देख रहे हैं, वे मानव-सृष्टि के आरंभ में नहीं थीं। उन दिनों चाहे मनुष्य-जाति की दशा व्यवस्था, शांति और उन्नति-युक्त रही हो; किंतु आज के युग में तो उस आरंभ को अव्यवस्थित एवं अशांत कहा जायगा। उस अव्यवस्थित युग में स्त्री-पुरुष स्वतंत्र विचरण करते थे। उनका पारस्परिक संबंध नैसर्गिक था। जिस प्रकार आज हम पशु-पक्षियों में नर-मादे का काम-विकार नैसर्गिक पाते हैं, वही दशा उन दिनों स्त्री-पुरुषों की थी। काम-विकार के जागरित होने पर स्त्री-पुरुष मैथुन में प्रवृत्त होते और उसके उपशमित होते ही अलग-अलग हो जाते थे। एक का दूसरे से क़तई संबंध नहीं रह जाता था। इसका परिणाम स्त्री के लिये महँगा सौदा बन जाता था। पुरुष तो अपनी कामेच्छा शांत करके, बेफ़िक्र हो इतस्ततः स्वच्छंद विचरण करते और बेचारी स्त्रियों को गर्भ रह जाने के कारण बड़ी ही ज़िम्मेवारी महसूस करनी पड़ती थी। सगर्भा दशा में अपना निर्वाह, प्रसूता होने पर अपना और बच्चे का पोषण और जब तक बच्चा सयाना न हो जाता तब तक उसकी देख-भाल प्रभृति अनेक उत्तरदायित्वों के भार से स्त्रियाँ बुरी तरह दबी रहती थीं। अपना भार हलका करने के लिये, अपना दायित्व कम करने के लिये स्त्रियों को अपने लिये एक साथी की—एक सहायक संगी की—आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इसके लिये पुरुष की सहायता अपेक्षित हुई। विवाह का यही मूल-बीज है। यहीं से गार्हस्थ्य विज्ञान (Domestic Science) का श्रीगणेश होता है।

स्त्री-जाति ने जब पुरुष से संगी बनकर अपने दायित्व में भाग लेने को कहा, तो पहलेपहल उसने लगाम छुड़ाकर भागने की कोशिश की, परंतु उसने स्नेह, सेवा, सहनशीलता आदि गुणों की मोहनी डालकर आख़िर उसे अपने क़ब्ज़े में कर ही तो लिया। उसने वह जादू डाला कि पुरुष को अपने जीवन

का चिरसंगी और अपने दुख-सुख का साथी बना लिया। जब पुरुष स्वच्छंद विहारी था, तब स्त्री ने हीं उसे अपने प्रेम-पाश में जकड़कर अपना सहचर बनाया। आज भी ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं कि जब तक पुरुष किसी स्त्री से संबंधित नहीं होता, कुछ हल्का-सा और स्वतंत्र रहता है; किंतु ज्यों ही उसका विवाह हो जाता है, वह किसी स्त्री का पति बन जाता है, उसका वैयक्तिक सुख और स्वार्थ सामाजिकता की ओर अग्रसर होने लगता है। उसका जीवन मनुष्यता की ओर क़दम बढ़ाता दिखाई देता है। यहीं से वह संसार को अपना और अपने को संसार का समझने लगता है। यही दशा स्त्री की है। जब तक वह अकेली है, संसार उसके लिये शून्य है, अंधकार है, दुःखमय है, हाहाकार-मयी यंत्रणा है, प्रलयाग्नि है। सारांश यह कि मानव-समाज के संसार का आदि-स्रोत नर-नारी का सम्मिलन है।

स्त्री-पुरुष के इस एकीकरण के पश्चात् ही यह गार्हस्थ्य शास्त्र निर्मित हुआ। स्त्री-पुरुष के मेल से कुटुंब की उत्पत्ति हुई, और कुटुंब-समूह से समाज-शास्त्र की रचना हुई। समाज-रचना के पश्चात् मानव-धर्म-शास्त्र की रचना होती है। सारांश यह कि गार्हस्थ्य शास्त्र से ही समाज-शास्त्र एवं मानव-धर्म-शास्त्र का उद्भव हुआ है। तत्कालीन सामाजिक नेताओं और समाज-सुधारकों ने अपने समय की परिस्थिति के अनुसार उक्त शास्त्रों में यथासमय देश-कालानुसार संशोधन किए, और नियमों में न्यूनाधिकता की। सामाजिक, धार्मिक और गार्हस्थ्य स्थितियों की सर्वोत्तम विधायक पुस्तक मनुस्मृति है। मनुकालीन शासकों और परमार्थी सज्जनों ने समाज को मार्ग दिखाने के लिये नियम, व्यवस्था और नियंत्रण की आवश्यकता समझी। विद्वानों की, अनुभवी और परोपकारी व्यक्तियों की एक समिति बैठी, जिसके सभापति मनु बनाए गए। उसकी जो रिपोर्ट सर्व-सम्मति द्वारा स्वीकृत की गई, उसका नाम मनुस्मृति पड़ा। मनुस्मृति अपने समय का समाज-शास्त्र था। यथासमय उसमें संशोधन-परिवर्तन भी हुए। परंतु उसमें परिवर्तन एवं संशोधन हुए शताब्दियाँ बीत गईं। अब मनुस्मृति को समाज-शास्त्र मानना समाज के सिर ज़बरदस्ती भार लादना है। मनुस्मृति हमारे प्राचीन आचार-विचार और व्यवहार की निदर्शिका और हमारी प्राचीन समाज-व्यवस्था का इतिहास है। परंतु उसमें वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुसार बिना परिवर्तन किए मौजूदा ज़माने में उसे सर्वांशतः स्वीकार कर लेने में हमारा अहित संभव है। अस्तु।

मैं अपने विषय से अधिक दूर नहीं भटक गया हूँ। हाँ, तो मैं यह सिद्ध कर रहा हूँ कि गार्हस्थ्य शास्त्र ही नहीं, अपितु समाज-शास्त्र और मानव-धर्म-शास्त्र

की मूल-जननी स्त्री-जाति है, पुरुष-जाति नहीं। यदि स्त्री ने अपना दायित्व-भार हलका करने के लिये पुरुष को न पुचकारा होता, तो इस संसार में कोई उन्नति न हुई होती। संसार के सबसे पुराने और हिंदुओं के मान्य ग्रंथ वेदों तक में दांपत्य विज्ञान ने स्थान पाया। नारी-जाति का वर्णनातीत सम्मान वैदिक काल में था। स्त्री अपने कुटुंब में सम्राज्ञी के पद पर प्रतिष्ठित की गई थी—

"सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ;
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः।"

अर्थात्—वधू, तू ससुर, सास, देवर, ननँद आदि की महारानी बनकर रह। और देखिए—

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवेवृषा ;
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य।"

इत्यादि वेद-मंत्रों से स्त्री-जाति के अधिकार, पद, प्रतिष्ठा और मान-सम्मान का पूरा पता चल जाता है।

वेदों के बाद अन्य शास्त्रकारों ने भी—

"दाराधीनाः क्रियाः सर्वा दारा स्वर्गस्य साधनम्।"

कहकर स्त्री-जाति की महत्ता प्रदर्शित की है। मनु-काल में भी स्त्रियों का समुचित आदर-सम्मान था। उन दिनों—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

का सिद्धांत माना जाता था। इसके पश्चात् स्त्री-जाति अपना पद अक्षुण्ण नहीं रख सकी। जिस गुण के कारण स्त्री ने पुरुष को अपना आरंभ में साथी बनाया था, वह गुण उसमें न रहा, और पुरुष उस पर अपना इतना आधिपत्य स्थापित करता चला गया कि स्त्री-जाति निरंतर दबती ही गई, और दबते-दबते इस दशा को पहुँच गई कि पुरुष की दृष्टि में स्त्री का कोई मूल्य ही नहीं रह गया। अब वह—

"स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।"

स्त्री को शूद्र के तुल्य मानने लगा। भारतीय नारियाँ वेद की अधिकारिणी नहीं रह गईं। एक युग था, जब स्त्रियों का बोलबाला था—समानाधिकार ही नहीं, विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। वह कितना सुखद दृश्य था! श्रीराम वन-गमन की आज्ञा प्राप्त्यर्थ अपनी माता कौशल्या के महल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—

"सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ;
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला।"

माताजी ऊनी वस्त्र पहने वेद-मंत्र पढ़कर अग्नि में आहुतियाँ दे रही हैं। जहाँ ऐसी सत्परायणा स्त्रियाँ होती थीं, वहीं उनकी कोख से श्रीराम-जैसे विश्व-वंद्य महापुरुषों ने जन्म लिया था। राम-पत्नी श्रीसीतादेवी का एक चित्र देखिए। श्रीहनुमान्‌जी लंका पहुँचकर अशोक-वन में श्रीसीताजी को ढूँढ़ते हैं। उन्होंने देखा—

"सन्ध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी;
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।"

श्रीसीताजी नदी-तट पर सायंकाल के समय संध्योपासना कर रही हैं। यह है हमारे प्राचीन उन्नत युग की नारियों की झाँकी का एक दृश्य। उन्नति के बाद पतन और पतन के बाद उन्नति, यही इस संसार का सनातन नियम है। इससे स्त्री-जाति न बच पाई। वह कुटुंब में सम्राज्ञी के पद से च्युत होकर 'पैर की जूती' बन गई। इसमें स्त्री-जाति का ही दोष विशेष माना जायगा, क्योंकि वह अपनी पूर्वजाओं के बनाए गृहस्थ-धर्म को सँभाल न सकी। अपनी सेवा और प्रेम से पुरुष-जाति को अपना बनाए न रह सकी। पुरुषों ने स्त्री जाति का अपमान आरंभ कर दिया—

"स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।"

और "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" कहकर उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं। वृद्ध चाणक्य ने तो स्त्री की सर्प से तुलना की है—

"अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पो राजकुलानि च,
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट्।"

इनके अतिरिक्त श्रीतुलसीदासजी ने तो अपने मानस-ग्रंथ में—

"ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।"

और—

"अधम ते अधम नारि जग माहीं।" इत्यादि।

इन रचनाओं से हमें कवि पर नाराज़ नहीं होना चाहिए। कवि का काव्य तो उसके समय का चित्र होता है, इतिहास की भूमिका होती है। इस समय स्त्री-जाति इतनी गिरी अवस्था को पहुँच चुकी थी कि पुरुष-जाति का उस पर से विश्वास उठ गया था। वह पुरुष के प्रेम का संपादन न कर सकी। वह गृहस्थाश्रम, जो नंदन-कानन के कल्पतरु के तुल्य आनंददाता होना चाहिए, दहकता हुआ मरघट-सा बन गया।

विविध रूढ़ियों और परंपरागत विचारों में शनैः शनैः दोषोत्पन्न होने के कारण नारी-जाति का, विशेषतः हिंदू-नारियों का, जीवन अत्यंत संकटमय ही

नहीं, अपितु शिकंजे में जकड़ा गया है। उसके विविध पहलुओं पर यदि विशेष ध्यान-पूर्वक विचार किया जाय, तो यह स्पष्ट मालूम होने लगता है कि आज स्त्री का हमारे समाज में कोई स्थान नहीं एक समय जिसके कारण हमारे समाज का संगठन हुआ था, आज वही नारी-जाति समाज में अपना कुछ भी स्थान नहीं रखती, यह कितने दुःख एवं आश्चर्य का विषय है। आज हमारे समाज में स्त्री-जाति का कोई महत्त्व नहीं। वह आज केवल पुरुषों की विषय-वासना की पूर्ति का साधन मात्र समझी जाती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति उनके मनोऽनुकूल व्यवहार से अनभिज्ञ हैं। पुरुष के साथ विवाह हो जाने के उपरांत स्त्री यह नहीं जानती कि अपने नए, अपरिचित प्रेमी के साथ कैसा व्यवहार करे पति के साथ कैसा व्यवहार किया जाय कि प्रथम-मिलन (सुहाग-रात) के दिन ही वह उसकी ओर आकर्षित हो जाय। इस बौद्धिक अभाव के कारण ही आज स्वर्गोपम गृहस्थाश्रम रौरव नरक बना हुआ है।

प्रथम मुलाक़ात का जो प्रभाव मन और मस्तिष्क पर होता है, वह चिरस्थायी और प्रभाव-युक्त रहता है। स्त्री-पुरुष की सुहाग-रात उन्हें आमरण याद रहती है। यहीं से स्त्री का वास्तविक जीवन शुरू होता है। पति के मन पर अपने प्रेम की छाप बिठाने का यही अवसर होता है। तत्पश्चात् पति के साथ व्यवहार के द्वारा उस पर विजय पाई जा सकती है, परन्तु इस संबंध में भूलें हो जाने के कारण ही गृहस्थी का मज़ा किरकिरा हो जाता है। इस विषय की शिक्षा का अभी तक भारत में कोई प्रबंध नहीं, और न निकट-भविष्य में कोई आशा ही है। भारतेतर देशों में दांपत्य विज्ञान की शिक्षा के लिये पाठशालाएँ स्थापित हैं। यहाँ तो जो कुछ भी लुक-छिपकर देख-सुन लिया जाता या समझ लिया है, वही काम विज्ञान की शिक्षा है। स्त्रियाँ विवाह के पूर्व या बाद में जो कुछ भी अपनी सखी-सहेलियों से जान लेती या अनुभव सुनती हैं, वही उनका ज्ञान होता है। सखी सहेलियाँ इस विषय की ज्ञाता या विशेषज्ञ तो होती नहीं। ऐसी वैसी, उलटी-सीधी बातें कहकर गुमराह बना देती हैं। एक घटना सुनिए—

पति-पत्नी में मनमुटाव हो गया। पति ने अपनी स्त्री से बातचीत तक करना छोड़ दिया। इस प्रकार एक साल बीत गया। संयोगात् एक वर्ष तक पत्नी को अपने पिता के घर रहना पड़ा। इस प्रकार दो वर्ष बीत गए। जब वह आई, तब पति ने बड़े विचार के पश्चात् स्त्री से प्रेम प्रकट करके उसके दुखी मन को प्रसन्न करना चाहा। परंतु रात को जब पति ने उससे बातचीत करनी शुरू की

और प्रेम प्रदर्शित किया, तो उस मूर्खा स्त्री ने समझा, झख मारकर प्रेम करने लगे हैं, अतएव अब मैं जितनी एेंठूँगी, उतनी ही यह मेरी मिन्नतें करेंगे। इत्यादि। ज्यों ही पति ने बातचीत शुरू की, उसने बेपरवाही दिखाई। प्रेमालिंगन के लिये ज्यों ही पति ने इच्छा प्रकट की, तो उसने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया, और शय्या से उठकर चल दी। पुरुष के दिल पर वह धक्का लगा, और उसके प्रति वह घृणा उत्पन्न हुई कि आज तक, लगभग १० वर्ष होने आए, उसने फिर कभी स्त्री से प्रेमालाप की इच्छा तक नहीं की! वह स्त्री सधवा होकर भी आज विधवा की तरह समय व्यतीत कर रही है।

यह एक साधारण बात है। तात्पर्य यह कि काम-विज्ञान की शिक्षा के अभाव में हमारे देश के प्रतिशत दंपति विवाह और विवाहित जीवन को अपने लिये अभिशाप बनाए बैठे हैं। जो अविवाहित हैं, वे विवाह के लिये चिंतित और दुखी हैं, परंतु जो विवाहित हैं, वे भी दुखी हैं, और पश्चात्ताप करते हैं। वे कहते हैं, विवाह करना पाप है। इन सब दुःखों, विपत्तियों, पश्चात्तापों, कष्टों, संकटों और कठिनाइयों का मूल-कारण काम-विज्ञान की अनभिज्ञता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'आदर्श पत्नी अर्थात् इंदिरा के पत्र' के लेखक श्रीयुत बाबू रामनारायणजी 'यादवेंदु' बी० ए०, एल्-एल्० बी० ने पुस्तक लिखकर स्त्री जाति के तिमिराच्छन्न मार्ग को आलोकित किया है—स्त्री-जाति के अपने पूर्व-पद पर प्रतिष्ठित होने के लिये रास्ता दिखाया है। यह पुस्तक 'काम-शास्त्र' है। विद्वान् लेखक ने पौरस्त्य और पाश्चात्य विज्ञान की भित्ति पर अपने विचार-प्रासाद का निर्माण किया है। पुस्तक का नाम पढ़कर कोई भी यह न समझ सकेगा कि इसमें काम-विज्ञान पर कुछ लिखा गया होगा। लेखक इस विषय का अधिकारी है। आपका 'दांपत्य विज्ञान' पहले प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक में इंदिरा ने शांता को पत्र लिखे हैं। इन पत्रों की संख्या १२ है। पत्रों द्वारा स्त्री-जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला गया है। नारी-जीवन की प्रत्येक गुत्थी अच्छी तरह सुलझाई गई है। गार्हस्थ्य शास्त्र-विषयक कोई भी बात इसमें छूटने नहीं पाई है। अंत में परिशिष्ट देकर पुस्तक के बचे-खुचे अभाव की भी पूर्ति कर दी गई है।

लेखक ने १२वें पत्र में 'आदर्श संतान-निग्रह'-शीर्षक के अंतर्गत समाज के वर्तमान प्रश्न को भी बड़ी होशियारी से हाथ में लिया है। यह प्रश्न इस समय हमारे देश में बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण है। इस समय हमारे देश का कल्याण संतति-निग्रह में ही है, क्योंकि आज भारत की जन-संख्या में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हो रही है। आज से तीन सौ वर्ष पूर्व भारत की जन-संख्या सिर्फ़ १०

करोड़ थी, [illegible] में करीब [illegible] १४ करोड़ थी, और आज है ३० करोड़। [illegible] होती [illegible] में ही [illegible] जाते हैं, किंतु [illegible] की एक [illegible] होती जाती है। [illegible] वर्ष की उम्र में ही [illegible]। अब ज़रा यह देखिए कि भारत में कुल कितना [illegible] है। भारत में ३४ लाख [illegible], ३८ लाख [illegible] और १६,१३४ [illegible] कुल होता है। यदि आज [illegible] की [illegible], तो भी भारत के लगभग ७ करोड़ मनुष्यों को भोजन न मिलेगा, अर्थात् ११ प्रतिशत मनुष्यों को भूखों मरना ही चाहिए। खाने के लिये खाद्य सामग्री का कुछ प्रबंध नहीं, और आनेवाले बढ़ते ही जा रहे हैं। यदि यही रफ़्तार रही, तो [illegible] शताब्दी के बिलकुल अंत में यहाँ ४४ करोड़ मनुष्य होंगे। वे खायँगे क्या? इसका उत्तर तो कुछ भी नहीं। वे भूखे, भूखे, निर्बल और रोगी होंगे, परंतु संख्या में कम कदापि न होंगे। ज़रा सोचिए तो, इस बढ़ती जन-संख्या का परिणाम क्या होगा? देश की बड़ी बुरी दशा होगी। इसलिये इस युग में संतति-नियमन परम आवश्यक प्रश्न है। इस युग में संतान पैदा करना पाप है। वह देशद्रोही है, जो दस-दस बच्चे पैदा करता है। जो बच्चे उत्पन्न नहीं करता, वही धर्मात्मा है, देश-भक्त है। संतान पैदा करना तो पाप नहीं, परंतु इस युग में यह पाप अवश्य है। रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अल्पायु, जर्जर-काय, उत्साह-हीन संतानों से भारत को भर देने की अपेक्षा तो बच्चे पैदा न करना ही अच्छा है। अथवा जो भूमि बंजर पड़ी है, उसे आबाद करें। आज हममें यह शक्ति भी तो नहीं कि अपनी वृद्धिगत जन-संख्या को बसाने के लिये इटली की तरह अबीसीनिया और जापान की तरह चीन पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लें। काश आज भारत स्वतंत्र होता, तो यह भी आस्ट्रेलिया या अफ्रिका की ओर दृष्टि डालता, और वहाँ की प्रायः निर्जन भूमि पर भारतीयों के उपनिवेश स्थापित करता। अस्तु।

वर्तमान कट्टरपंथियों के विचारों और उल्लेखों ने भारतीय नारी-जीवन को दुःखमय बना डाला है। भारत की अधोगति में नारी-जाति का यह तिरस्कार मूल-कारण है। हिंदू-नारी का वास्तविक जीवन विवाह के समय से आरंभ होता है। लेखक की पुस्तक का आरंभ भी 'विवाह'-शीर्षक पत्र से ही होता है। स्त्री-पुरुष के वैवाहिक सम्मिलन से ही गृह-संसार का आरंभ होता है। पत्नी गृह तंत्र की संचालिका है, वही गार्हस्थ्य जीवन का उद्गम-स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक का प्रत्येक पत्र स्त्री को आदर्श पत्नी बनाने में पूर्ण सहायक होता है।

हर्ष है कि काम-विज्ञान पर अब विद्वान् लोगों ने अपनी लेखनी उठाई है, और हिंदी-संसार में इस विषय की उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। साहित्य में यह विषय सदा से ही विचारणीय रहा है। वेदों तक में दांपत्य विज्ञान का विशद वर्णन है। पत्रों के रूप में यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। मैंने 'काम-विज्ञान' पर 'स्त्री की चिट्ठी'-नामक एक पुस्तक और भी ऐसी ही देखी थी। परंतु यह अपने ढंग की अनूठी रचना है। ऐसा कोई विषय अछूता नहीं, जिसे लेखक ने न छुआ हो। गार्हस्थ्य ज्ञान के लिये यह पुस्तक प्रकाशवाहक होगी। जब तक ज्ञान के अनुकूल कार्य न हो, तब तक उस ज्ञान का कुछ भी मूल्य नहीं होता। सिद्धि तो कार्य से होती है, अतएव पाठक एवं पाठिकाओं का कर्तव्य है कि पुस्तक में वर्णित बातों का क्रियात्मक अनुभव करें, और फल के लिये आशा-पूर्ण प्रतीक्षा करें। क्योंकि जहाँ क्रिया है, वहाँ फल अवश्य मिलता ही है। आशा है, पाठक पुस्तक पढ़कर और तदनुकूल आचरण द्वारा लेखक का श्रम सफल करेंगे।

शांति-कुटीर
आगर, मालवा
१।८।३१

विनीत
गणेशदत्त 'इंद्र'

आत्मनिवेदन

विवाह मानव-जीवन की एक अपूर्व और सबसे अधिक महत्व-पूर्ण घटना है। विवाह सामाजिक जीवन के विकास का आदि स्रोत है। परंतु भारत में इसकी जैसी दुर्गति होने में आती है, वैसी किसी देश या युग में नहीं हो, इसमें संदेह है। वैवाहिक जीवन की विषमताओं के कारण हमारा वैयक्तिक जीवन ही नहीं सामाजिक जीवन भी नीरस और दुःखमय बन गया है। पत्नी पति से संतुष्ट नहीं, तो पति पत्नी से असंतुष्ट है। फलतः पारिवारिक जीवन एक विषम पहेली बन गया है। गृह-कलह और दांपत्य जीवन के असामंजस्य के कारण घर-बाहर अशांति-ही-अशांति दिखाई पड़ती है।

अनुभव बतलाता है कि इस घोर अशांति और गृह-कलह का मूल-कारण है पति-पत्नी की दांपत्य विज्ञान से अनभिज्ञता। पत्नी को दांपत्य मनोविज्ञान की कोई शिक्षा नहीं मिलती। कन्या-पाठशालाओं में इस विषय का अध्ययन 'अश्लीलता' में गिना जाता है। गृह में मा को इस विषय में 'अश्लीलता' की गंध आती है। मा चाहती है, मेरी पुत्री अबोध 'बालिका' बनी रहे, और विवाह-पर्यंत उसको पत्नी, मा और गृह-जीवन के रहस्यों का ज्ञान ही न होने पाये। अज्ञानी माताओं की यह धारणा है कि यदि वे अपनी पुत्रियों को दांपत्य विज्ञान की शिक्षा देंगी, तो इससे उनका चरित्र बिगड़ जायगा। इस विज्ञान के चमत्कार से कहीं वे पतन की ओर अग्रसर न हो जायँ। इस प्रकार का भय माताओं को लगा रहता है। जिस प्रकार 'बाइबिल' के 'ईश्वर' (God) ने आदम और ईव को अदन-बाग़ में 'ज्ञान-वृक्ष' के फल से वंचित रक्खा था, वैसे ही भारतीय माताएँ अपनी पुत्रियों को इस विषय में अंधकार में रखना चाहती हैं।

युवतियाँ विवाह तक और अधिकांश में विवाहोपरांत भी दांपत्य जीवन के 'रहस्यों' से अनभिज्ञ रहती हैं। वे अपनी विवाहित सखी-सहेलियों से गृह-जीवन के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये लालायित रहती हैं। परंतु दुर्भाग्य तो यह है कि विदुषी और दांपत्य विज्ञान में निपुण सहेलियाँ बहुत कम मिलती हैं।

ऋषि वात्स्यायन ने अपने ग्रंथ 'कामसूत्र' में यह आदेश दिया है कि कुमारी को दांपत्य विज्ञान की शिक्षा अपनी बड़ी भगिनी अथवा अंतरंग अभिन्नहृदया

सहेली से प्राप्त करनी चाहिए। परंतु जब ये शिक्षिकाएँ ही अँधेरे में हों, तो फिर उनसे प्रकाश की आशा करना ही व्यर्थ है।

आज हिंदी-साहित्य में काम-विज्ञान पर अनेकों पुस्तकें उपलब्ध हैं। स्वर्गीय श्रीप्रेमचंदजी के शब्दों में आज का हिंदी-साहित्य कथा-कहानी और काम-विज्ञान की पुस्तकों से भरा पड़ा है। परंतु इन ढेरों पुस्तकों में से केवल ४-६ पुस्तकें ही ऐसी हैं, जो वैज्ञानिक ढंग से इस विषय का विवेचन करती हैं, और जो जनता के लिये उपयोगी हैं। अधिकांश पुस्तकें तो इतनी अश्लील और भद्दी हैं कि उनसे जनता को लाभ के स्थान में हानि ही हो रही है, और अर्थ-लोलुप प्रकाशक अपनी धनैषणा की तृप्ति में संलग्न हैं।

मैंने कई वर्षों तक इस विषय का अध्ययन किया है। हिंदी की प्रायः सभी पुस्तकों को देखा है, और अँगरेज़ी में भी यथाशक्ति उत्तमोत्तम श्रेष्ठ पुस्तकें देखी हैं। हिंदी की अधिकांश पुस्तकों में यह दोष पाया जाता है कि वे या तो अँगरेज़ी-ग्रंथों के अविकल 'अनुवाद'-मात्र हैं, अथवा संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद। कहने की आवश्यकता नहीं कि दांपत्य-जीवन-संबंधी अँगरेज़ी-साहित्य का दृष्टिकोण भारतीय दृष्टिकोण से भिन्न है, और प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों का विवेचन वर्तमान सामाजिक जीवन और आधुनिक युग के अनुकूल नहीं। परंतु हिंदी में मुझे सबसे बड़ी कमी यह प्रतीत हुई कि दांपत्य जीवन के विवेचक ग्रंथों में पत्नीत्व और मातृत्व को उच्च स्थान नहीं दिया गया है। पत्नीत्व और मातृत्व के आदर्शों की विवेचना करनेवाले ग्रंथों की संख्या अति न्यून है।

वर्षों हुए, जब मैंने यह विचार किया था कि मैं एक ऐसी पुस्तक लिखूँ, जो स्त्रियों के लिये सर्वोपयोगी हो। जब मैंने सन् १९३१ में 'दांपत्य जीवन' पुस्तक लिखी*, तब मुझे यह अनुभव हुआ कि दांपत्य विज्ञान-संबंधी पुस्तकें स्त्रियों के लिये अलग होनी चाहिए।

मैंने अपने विवाहोपरांत अपनी सहधर्मिणी श्रीमती सत्यवतीदेवी के लिये दांपत्य विज्ञान-संबंधी एक पुस्तक उपहार में भेजी। पुस्तक उनके इच्छानुसार भेजी गई थी। मैंने बाज़ार में अच्छी-से-अच्छी पुस्तक तलाश की, परंतु मुझे मेरे इच्छानुसार श्रेष्ठ और उपयोगी पुस्तक न मिली। मुझे मालूम हुआ, वह पुस्तक 'अश्लील' और 'अपठनीय' ठहराकर मेरी पत्नी को पढ़ने के लिये नहीं दी गई, यहाँ तक कि उनकी मा ने उसे उन्हें देखने तक भी न दिया।

---

* प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

पुस्तक कैसी थी, मैं इस विषय में यहाँ कुछ न लिखूँगा, उसकी आलोचना के लिये यह स्थान उपयुक्त नहीं। परंतु उस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि पुरुषों के लिये निर्मित दांपत्य विज्ञान-संबंधी पुस्तकें यदि श्रेष्ठ और वैज्ञानिक भी हों, तो भी स्त्रियों के लिये उपयुक्त और उपयोगी नहीं। ऐसी पुस्तकों का अधिक भाग ऐसे रहस्यों के विवेचन से परिपूर्ण रहता है, जिसकी पत्नी के लिये कोई उपयोगिता नहीं होती। मैंने निश्चय किया, मैं स्वयं इस विषय पर पुस्तक लिखकर भेजूँगा। परंतु समयाभाव से एक स्थान पर बैठकर पुस्तक लिखना बड़ा कठिन था। अतः मैंने प्रति सप्ताह 'इंदिरा के पत्र' लिखने शुरू किए। बस, यही मेरी इस पुस्तक की कहानी है।

उन पत्रों को मेरी सहधर्मिणी ने बड़े यत्न से सँभालकर रक्खा। उन्हीं पत्रों का संग्रह यह 'आदर्श पत्नी' है। मैंने पत्रों में पर्याप्त संशोधन किया है, जिससे यह पुस्तक प्रत्येक शिक्षित बहन के हाथों में दी जा सके।

मैंने इस पुस्तक को यथाशक्ति उपयोगी, सुंदर और अश्लीलता-हीन बनाने का प्रयत्न किया है। भावों के प्रकाशन में संयम से काम लिया गया है और भाषा को अधिक गंभीर एवं संयत बनाने का ध्यान रक्खा है। मेरा तो यह विश्वास है कि यह पुस्तक निःसंकोच भाव से पत्नियों, बहनों और पतियों के हाथों में दी जा सकती है। इससे उनके जीवन में उन्हें सुख, शांति और चरित्र-निर्माण में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

'आदर्श पत्नी' के लेखन में मुझे जिन-जिन पुस्तकों और पत्रिकाओं से सहायता मिली है, उनका नाम यथास्थान पाद टिप्पणी में दे दिया है। मैं इस सहायता के लिये कृतज्ञ हूँ।

सबसे अधिक सहायता श्रीडॉ० सुंदरीमोहनदास एम्० बी० (प्रिंसिपल चितरंजन-अस्पताल, कलकत्ता) के 'शिशुमंगल', प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार श्रीरामनाथ 'सुमन' की 'भाई के पत्र' और श्रीडॉ० रामदयाल (गुरुकुल काँगड़ी) की पुस्तक 'प्रसूति-तंत्र' से मिली है। अतः मैं उपर्युक्त विद्वज्जनों का अतीव अनुगृहीत हूँ।

शांति-निवास
राजामंडी, आगरा } रामनारायण 'यादवेंदु'

सूची

पत्र-संख्या विषय	पृष्ठ
१. विवाह	१
२. दांपत्य विज्ञान की शिक्षा	१०
३. ससुराल	१६
४. सुहाग-रात	२१
नवजीवन	२१
सौभाग्य-रात्रि	२२
नववधू की कल्पना	२३
प्रेम की अभिव्यक्ति	२४
प्रेमालाप	२४
विवाह-प्रतिज्ञा की स्मृति	२६
वात्स्यायन का उपदेश	२७
५. विवाह का आनंद	२६
काम का रहस्य	२६
दांपत्य जीवन में काम का महत्त्व	३२
दांपत्य प्रेम	३३
प्रथम सहवास—एक नूतन	
	३४
	३६
को	
	३६
	३८
	३८
	४१
	४२
शारीरिक सौंदर्य	४४
भोजन-तत्त्व	४५
भोजन बनाने की विधि	४७
व्यायाम	४७
स्नान	५०
जननेंद्रिय की स्वच्छता	५१
केशों का सौंदर्य	५२
स्तन	५३
शील—नारी का सच्चा भूषण	५४
साड़ी—लोकप्रिय पोशाक	५५
७. रजोदर्शन	५७
रजोदर्शन क्या है ?	५७
प्रथम मासिक धर्म	५८
मासिक धर्म के समय के लक्षण	५८
रक्त कैसे प्रवाहित होता है ?	५८
उत्तेजना का अनुभव	५६
शुद्ध रक्त के लक्षण	
रक्त की मात्रा	५६
रजस्वला की दिनचर्या	६०
गर्भाधान	६२
८. दांपत्य प्रेम की साधना	६४
प्रेम कला है	६४
पुरुष का मनोविज्ञान	६५
आज्ञा-पालन	६६
गलतफ़हमी और मतभेद	६८
श्रद्धा और विश्वास	७०

पत्र-संख्या विषय	पृष्ठ
सतीत्व का आदर्श	७१
पुरुषों की दूषित मनोवृत्ति	७५
सतीत्व-रक्षा के उपाय	७८
सेवामय जीवन	७९
पत्नी प्रेमिका के रूप में	८०
पत्नी मित्र और सखा के रूप में	८२
स्त्री पुरुष की जननी है	८२
६. सुखी दांपत्य जीवन का रहस्य	८४
सौंदर्य की ईर्ष्या	८४
अमृत-सी बोली	८५
रसिकता और विनोद	८६
प्रसन्न-वदन	८७
संगीत-प्रेम	८७
हृदय की विशालता	८८
सहनशीलता	८९
१०. मातृत्व	९१
माता का गौरव	९१
स्त्री-जननेंद्रियाँ	९२
वस्ति-गुहा	९३
बाह्य जननेंद्रियाँ	९३
आंतरिक जननेंद्रियाँ	९४
गर्भ-धारण	९६
उच्च शिक्षा और मातृत्व	९६
गर्भ-विज्ञान	९८
गर्भ का विकास	१००
गर्भ-धारण के तात्कालिक लक्षण	१०२
गर्भ के लक्षण	१०३
गर्भवती की दिनचर्या	१०४
शुद्ध जल-वायु	१०८
गर्भावस्था में संभोग हानिकर है	१०८
गर्भावस्था में रोग	१०९
गर्भ-स्राव के कारण, लक्षण और गर्भ पात	११०
११. प्रसव और प्रसूता	११२
प्रसव-वेदना	११२
आसन्न प्रसूता के लक्षण	११३
प्रसूतागार	११४
प्रसूतागार की आवश्यक सामग्री	११४
प्रसव की तैयारी	११५
प्रसव की व्यवस्था	११६
पूर्ण विश्राम	११८
प्रसूता का भोजन	११९
स्नान और शुद्धि	११९
नवजात शिशु	१२०
शारीरिक शुद्धता	१२०
शिशु की पोशाक	१२०
निद्रा	१२१
पेट की शुद्धता	१२१
शरीर की मालिश	१२२
शिशु का सर्वोत्तम भोजन मा का दूध है	१२२
स्तन-पान के नियम	१२३
मा के दूध के अभाव में बकरी का दूध उत्तम है	१२३
दूध को रखने का नियम	१२४
शिशु को स्तन-पान कब न कराना चाहिए	१२५

पत्र-संख्या विषय	पृष्ठ	पत्र-संख्या विषय	पृष्ठ
शिशु-चर्या	१२५	संतान-निग्रह के कृत्रिम उपाय	१३६
स्वस्थ बालक की नींद का नक़्शा	१२६	आदर्श संतान-निग्रह	१३८
आवश्यक बातें	१२७	संतान-निग्रह के प्राकृतिक उपाय	१४१
शिशु के शरीर का माप और भार	१२८	परिशिष्ट	
१२. आदर्श संतान निग्रह	१२६	बाल-रोग और उपचार	१४२
संतान निग्रह	१२६	स्त्री-रोग और उपचार	१४६
संतान-निग्रह कब ?	१३१	वंध्यापन	१५१
संतानोत्पत्ति-निग्रह के साधन	१३२	संतान निग्रह के आसन	१५४
महात्मा गांधी का आदर्श अशक्य है	१३३	गर्भाधान के आसन	१५५

१

विवाह

शांति-निवास, आगरा
१ मार्च, १९३७

प्रिय बहन शांता,

आज मुझे तुम्हारे शुभ विवाह का निमंत्रण मिला। यह मैं जानती थी कि तुम्हारा विवाह इसी वर्ष होगा। मैं जब पिछली बार प्रयाग गई थी, तब चाची ने मुझसे कहा था—"शांता विवाह-योग्य हो गई है; सगाई तो हो ही चुकी है, मार्च में, परीक्षा के बाद, उसका विवाह कर देंगे।" मैंने भी धीरे से कह दिया—"हाँ, ठीक है चाची-जी, सयानी होते ही मा-बाप को विवाह की चिंता सताने लगती है!"

मैं तुम्हारे स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। विद्यार्थिजीवन में तुम मेरी सबसे प्यारी सहेली रही हो। हम दोनो की मैत्री कितनी घनिष्ठ, समुज्ज्वल और शैशव की भाँति निर्दोष रही है। मैं आज उसी पवित्र मैत्री-भाव की प्रेरणा से तुम्हारे भावी जीवन के लिये अधिक चिंतित हूँ। मैंने अपनी पाठशाला में तुम-जैसी सुशीला, मृदुभाषिणी और सरला लड़की नहीं देखी। सहपाठिनी तुम पर ऐसी श्रद्धा रखती थीं, मानो तुम उनकी इष्टदेवी हो। जब वे 'विवाह'-संबंधी किसी प्रसंग पर वार्तालाप, विनोद या अट्टहास करतीं या तुम्हारी ओर संकेत करके तुम्हारे 'उनके' विषय में कुछ कहतीं, तो तुम अबोध बालिका की भाँति उनकी बातें हँसी में उड़ा देती थीं।

शांता, तुममें लज्जा-भाव अत्यधिक है। वैसे तो लज्जा स्त्री-जाति का भूषण है, स्त्री में लज्जा-भाव स्वाभाविक ही है, परंतु उसकी भी सीमा होती है।

तुम कुल-वधू का पद प्राप्त करने जा रही हो। अब तुम्हें भूगोल, गणित और इतिहास से ध्यान हटाकर गृहस्थाश्रम की शिक्षा लेनी चाहिए। इसमें सफल हुए विना जीवन सार-हीन प्रतीत होने लगता है। गृहस्थ-जीवन की परीक्षा सब परीक्षाओं में कठिनतम है। जो स्त्री इसमें पास हो गई, उसे सौभाग्यवती समझना चाहिए।

शांता, तुम्हें याद है, एक दिन तुमने अपनी मा से कहा था— "माताजी, मैं बी० ए० पास करूँगी। मेरा विवाह मत करना। मैं विद्यालय में अध्यापिका बनकर धन कमाऊँगी, कमा-कमाकर तुम्हें और पिताजी को खिलाऊँगी। मा, कितना आनंद आएगा!" तुम अबोध बालिका की भाँति, पंद्रह वर्ष की अवस्था में, यह सब एक साँस में कह जाती थीं। और, जब चाची यह कह देतीं कि "शांता, अपनी ससुराल में सास-ससुर को कमाकर खिलाना," तो तुम 'धत्' कहकर भाग जाती थीं। उस समय तुम यह न जानती थीं कि नारी को अपना जीवन सफल बनाने के लिये एक 'जीवन-सहचर' की आवश्यकता होती है। एकाकी जीवन पर्वतों की कंदराओं में विचरण करनेवाले योगियों और संन्यासियों के लिये है।

विश्व-नियंता ने इस विश्व में प्राणिमात्र में नर-नारी का भेद पैदा कर इस सृष्टि को निरंतर अक्षुण्ण रखने का जो साधन स्थिर किया है, वही तो सृष्टि का मूल है। नर-नारी दोनो ही अपूर्ण हैं। दोनो में ऐसी अपूर्णता है, जो पारस्परिक सहयोग और आदान-प्रदान के बिना दूर नहीं हो सकती। यही कारण है कि आदि काल से नर नारी और नारी नर के सहयोग और साहचर्य के लिये इच्छुक रहा या रही है। पुरुष और स्त्री के बीच जो स्वाभाविक आकर्षण है, वह भी इसी लिये कि ये दोनो सर्वदा एक दूसरे के संसर्ग की आकांक्षा करते रहें। विवाह एक ऐसा साधन है, जो पुरुष-स्त्री का विधिवत् संयोग स्थापित करता है। विवाह स्त्री-पुरुष के शरीर, मन और आत्मा में अभिन्नता की प्रतिष्ठा कर जीवन में स्वर्ग की सृष्टि करता है।

यदि स्त्री या पुरुष को कोई ऐसा साथी मिल जाय, जो जीवन-पर्यंत उनके हृदय में प्रेम-रस का संचार कर सकता हो, और उनमें शरीर-भेद के सिवा और किसी प्रकार का भेद-भाव न रहे, तो ऐसे व्यक्तियों को विवाह की आवश्यकता नहीं। परंतु संसार का अनुभव तो यही है कि ऐसा अभिन्न हृदय, सच्चा साथी प्रत्येक स्त्री-पुरुष को नहीं मिल सकता। विवाह जीवन में एक सच्चा साथी ही नहीं देता, प्रत्युत संतानोत्पत्ति का भी आयोजन करता है। संसार में भाई-बहन, माता-पुत्र के पवित्र संबंध विद्यमान हैं, जो मानसिक और आध्यात्मिक आधार पर स्थिर हैं। संभव हो सकता है, उक्त संबंध इतने उच्च कोटि

के हों, जिनके विषय में 'दो शरीरों में एक आत्मा' की लोकोक्ति चरितार्थ हो। पर इन संबंधों में शारीरिक संबंध नहीं होता, इसलिये जिस उद्देश्य से विवाह किया जाता है, वह भाई-बहन, पिता-पुत्री और माता-पुत्र के संबंध से पूरा नहीं होता।

आर्य-संस्कृति के अनुसार विवाह दो आत्माओं, दो हृदयों और दो शरीरों का ऐसा संयोग है, जो जीवन-पर्यंत चिरस्थायी रहता है। विवाह एक धार्मिक संस्था है, जो पति-पत्नी को त्याग, बलिदान, लोक संग्रह और परोपकार की शिक्षा देती है। इससे तुमने विवाह का महत्त्व समझ लिया होगा।

ऐसे स्थायी संबंध की स्थापना के लिये अत्यंत विवेक और दूर-दर्शिता की आवश्यकता है। मैं यह जानती हूँ, तुम्हारे पिताजी आर्य सामाजिक विचारों के हैं। वैदिक सिद्धांतों के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा है। उन्होंने तुम्हारे लिये वर की खोज करने में बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया है। धन-संपत्तिशाली बड़े कुल और जाति-पाँति को शिक्षा, सदाचार, स्वास्थ्य, गुण, कर्म और स्वभाव के सामने बिलकुल नगण्य समझा है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारा वर तुम्हारे अनुकूल, योग्य, शिक्षित और सदाचारी मिला है। वास्तव में तुम बड़ी भाग्यवती हो, जो तुम्हें ऐसा वर मिला।

मा-बाप की ग़लती या अंध-विश्वास से प्रतिवर्ष लाखों बहनें बाल-विवाह की भट्टी में झोंककर स्वाहा कर दी जाती हैं; यदि जीवन की कुछ घड़ियाँ अवशेष रह जाती हैं, तो वे वैधव्य जीवन के लिये आँसू बहाने में बीतती हैं। अनेक ऐसी बहनें हैं, जिन्हें सुंदर, स्वस्थ और मनोऽनुकूल पति न मिलने के कारण नानाविध वैवाहिक यंत्रणाएँ और अत्याचार सहने पड़ते हैं। इन कारणों से उनका दांपत्य जीवन उनके दुःखों की लंबी कहानी बन जाता है। इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'चाँद' में दांपत्य जीवन से दुखी बहनों के पत्र प्रतिमास छपते रहते हैं। उन्हें पढ़ने से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि भारत में आर्य-ललनाएँ वैवाहिक अत्याचारों से अत्यंत दुखी हैं।

मैंने ऊपर बतला दिया है कि हमारे यहाँ विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है। हमारी विवाह-संस्था और पाश्चात्य विवाह-प्रणाली में मौलिक भेद है। योरप और अमेरिका में विवाह एक

लौकिक इक़रारनामा (Contract) माना जाता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति इक़रारनामे को तोड़ सकता है, उसी प्रकार वहाँ पति-पत्नी भी अपने विवाह-बंधन को स्वेच्छानुसार तोड़ सकते हैं। भारत के मुस्लिम समाज में भी विवाह एक सामाजिक इक़रारनामा ही माना जाता है, धार्मिक संस्कार नहीं। दूसरी बात यह कि योरप और अमेरिका में विवाह तीस से चालीस वर्ष तक की अवस्था में होते हैं, और इस समय तक युवक और युवती विवाह से पूर्व ही विवाह के आनंद भोग लेते हैं *।

परंतु अपने यहाँ विवाह से पूर्व वर-कन्या का शारीरिक संयोग अधर्म माना जाता है। प्राचीन काल में कन्या को वर-निर्वाचन की स्वतंत्रता प्राप्त थी। आजकल की भाँति दुधमुँही बच्चियों का अबोध दशा में विवाह नहीं किया जाता था। प्राचीन समय में स्वयंवर की प्रथा प्रमाणित करती है कि कन्याओं का विवाह वय प्राप्त होने पर किया जाता था। सीता और द्रौपदी आदि के स्वयंवरों से यह स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन समय में वर-निर्वाचन के समय वर-कन्या के सदाचार और सतीत्व की रक्षा का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। स्वयंवर की प्रथा से यह भी ज्ञात होता है कि कन्याएँ आजकल की 'कॉलिज-कन्याओं' की भाँति रूप के मोह में फँसकर या काम-भाव से

---

* योरप और अमेरिका में विवाह से पूर्व प्रेमाचार (Courtship) का प्रचार अधिकता से है। विवाहेच्छुक युवक-युवतियाँ स्वच्छंदता-पूर्वक सिनेमा-घरों, उपवनों, वाटिकाओं, होटलों, आमोद-गृहों (Clubs), बाज़ारों आदि में मिलते-जुलते हैं, और परस्पर चुंबन, आलिंगन और संभोग करते हैं। अमेरिका में 'ट्रायल मैरिज' अर्थात् प्रयोगात्मक विवाह की रिवाज प्रचलित है। वहाँ कुछ समय तक (एक साल या इससे अधिक) युवक-युवती पति-पत्नी की भाँति व्यवहार करते हैं, और इस समय में वे पारस्परिक गुण-दोषों की भली भाँति परीक्षा कर लेते हैं। यदि उनके चरित्र और गुणों में साम्य होता है, तो वे विवाह कर लेते हैं, अन्यथा इस अस्थायी संबंध का विच्छेद हो जाता है। ये विवाह परीक्षणात्मक होते हैं। अमेरिका के जज लिंडसे ने 'युवकों का विद्रोह' (Revolt of Modern Youth)-नामक अँगरेज़ी-पुस्तक में अमेरिका के स्कूलों और कॉलेजों की कुमारियों तथा अविवाहित युवकों की व्यभिचार-लीला का ख़ूब भंडा-फोड़ किया है।—लेखक

प्रेरित होकर वर का चुनाव नहीं करती थीं * । वे अपने पति—भावी पति की योग्यता, प्रतिष्ठा, बल-पराक्रम, वीरता, सदाचार, ब्रह्मचर्य आदि गुणों की परीक्षा करती थीं।

आजकल भारत के शिक्षित-वर्ग में भी योरप के 'प्रेम-विवाहों' का अनुकरण हो रहा है। उच्च शिक्षित नवयुवक अपनी भावी पत्नी का चुनाव अपने आप करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझने लगे हैं। मैं यह मानती हूँ कि युवकों को इस दिशा में पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए, पर देखा यह जाता है कि वे स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता का तांडव नृत्य करते हैं। हिंदी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीयुत सुदर्शनजी ने 'कलयुग नहीं, करयुग है यह' †-नामक कहानी में नवयुवकों की वर्तमान प्रवृत्ति पर अच्छा प्रकाश डाला है। मैं नीचे कहानी का सारांश देती हूँ—

लाला सूरजमल की उषादेवी नाम की एक लड़की थी। उन्होंने उसे एक अँगरेज-महिला द्वारा शिक्षा दिलाई। उषा संगीत में निपुण थी। लाला सूरजमल ने अपने एक मित्र के पुत्र से उसका विवाह

---

* आजकल विश्वविद्यालयों और कॉलिजों की सहशिक्षा (Co-education) की प्रणाली लोकप्रिय होती जा रही है। जो लड़कियाँ कॉलिजों और युनिवर्सिटियों में उच्च शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे बहुधा अपने किसी सहपाठी के प्रेम में अनुरक्त हो जाती हैं। यदि मा-बाप जाति-बंधनों में विश्वास करनेवाले नहीं होते, और अधिक उदार होते हैं, तो उनका 'प्रेम' विवाह का रूप धारण कर लेता है, और यदि मा-बाप जाति पाँति के कट्टर अनुयायी हुए, तो वे बेचारे बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं। यदि प्रेमी-प्रेमिका साहसी हुए, तो समाज के बंधनों को तोड़कर अपना विवाह कर लेते हैं, अन्यथा उन्हें अपनी मनःकामना के प्रतिकूल मा बाप की इच्छा से किसी और स्त्री या पुरुष से 'प्रेम' करना पड़ता है। कहना न होगा, ऐसे व्यक्तियों का दांपत्य जीवन दुःखांत होता है।—लेखक

शिक्षित माता-पिताओं को चाहिए कि जब वे अपने लड़के-लड़कियों को स्नेह और सहृदयता के साथ उच्च शिक्षा दिलाते हैं, तो उन्हें अपने मनोऽनुकूल, अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुरूप जीवन-साथी चुनने का भी अधिकार दें। इसी में कल्याण है।—संपादक

† श्रीसुदर्शनजी की यह कहानी पंजाब की एक सत्य घटना के आधार पर लिखी गई है।—लेखक

पक्का किया। जब संबंध पक्का हुआ, तब वर महाशय विलायत में थे, और आई० सी० एस्० की तैयारी कर रहे थे। उषा को वर के पिता एवं घरवालों ने देख लिया, और उसे पसंद कर लिया था।

लाला सूरजमल के यहाँ बरात आ गई। रात के तीन बजे वर महाशय कन्या के पिता के द्वार पर जा खड़े हुए। लाला सूरजमल के पास अपने नाम का 'विज़िटिंग कार्ड' पहुँचा दिया। अब लाला सूरजमल बहुत व्याकुल हुए। द्वार पर आए, तो देखते हैं कि भावी दामाद खड़े हैं। लाला सूरजमल बड़े संकट में पड़ गए। इतनी रात को यहाँ उपस्थित होने का कारण पूछा गया, तो वर ने कहा—"मैं लड़की देखने आया हूँ मैंने वैसे लड़की की बहुत प्रशंसा सुनी है; भाभी का कहना है, ऐसी बहू हमारे कुल में कभी नहीं आई। बाबूजी भी उसकी तारीफ़ करते नहीं थकते। परंतु फिर भी, आप जानते हैं, अपनी-अपनी आँखें हैं, अपनी-अपनी पसंद। कल को अगर न बने, तो दोनो का जीवन नष्ट हो जाय। और, इसमें कोई हर्ज भी नहीं। हर्ज तब था, जब परदे का रिवाज था, अब तो परदे की प्रथा नहीं।"

लाला सूरजमल पुराने विचार के पुरुष थे। उनके लिये रिवाज अटल नियम थे। उन्हें समाज का भय था। इसलिये उन्होंने पहले तो इनकार कर दिया, और कहा—"मान लो, मैंने तुम्हें लड़की दिखा दी, और तुमने उसे पसंद न किया, तो क्या विवाह रुक जायगा? तुम कहोगे, इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हारे लिये न होगा, हमारी तो नाक कट जायगी।" इन बातों का वर पर कोई प्रभाव न पड़ा। वर ने कहा—"बिना देखे मैं विवाह न करूँगा।" अब सूरजमल बड़ी आपत्ति में पड़ गए। बरात घर आ गई थी, प्रातः आठ बजे विवाह-संस्कार होना था। पाँच घंटे का अंतर था। आख़िर पिता ने उषा को कमरे में बुला लिया। वर ने देखा, वह वास्तव में वैसी ही सुंदर है, जैसी उसकी तारीफ़ सुनी थी। वर ने पूछा—"आपने अँगरेज़ी पढ़ी है?" उषा ने संकोच से कहा—"पढ़ी है।" उसके हाथ में एक अँगरेज़ी का अख़बार देकर पढ़वाया। वह उषा के उच्चारण और मधुर कंठ पर मुग्ध हो गया। उषा ने संगीत में भी परीक्षा दी, और उसमें भी पास हो गई।

वर ने कहा—"मुझे लड़की पसंद है।"

उषा ने निश्चयात्मक भाव से कहा—"मगर तुम मुझे पसंद नहीं।"

उषा ने अपनी इस उक्ति के समर्थन में जो कहा, वह एक सुशीला महिला के लिये उपयुक्त है—

"अगर तुम लड़कों को यह अधिकार है कि विवाह से पहले लड़की को देखो, उसकी परीक्षा करो, और इसके बाद अपना फ़ैसला सुनाओ, तो हम लड़कियों को भी यह अधिकार है कि तुम्हें देखें, तुम्हें परखें, और तुम्हें अपना फ़ैसला सुनावें। मेरा फ़ैसला यह है कि मैं तुम्हारे साथ कदापि ब्याह नहीं कर सकती।...मैं सोलहो आने हिंदोस्तानी हूँ, और तुम सोलहो आने विदेशी। मैं ब्याह को आत्मिक संबंध मानती हूँ, जो मृत्यु के बाद भी नहीं टूटता। तुम्हारे समीप मेरा सबसे बड़ा गुण है कि मेरा रंग साफ़ है, और मेरे कंठ में लोच है। लेकिन कल यदि मेरे चेचक निकल आए या किसी अन्य रोग से मेरा रूप ख़राब हो जाय, तो तुम्हारी आँखें मुझे देखना भी पसंद न करेंगी। जिसकी पसंद ऐसी ओछी और कच्ची बुनियादों पर हो, उसका क्या विश्वास? तुममें किताबी योग्यता होगी, परंतु मनुष्यत्व नहीं।"

प्यारी शांता, इस घटना का वर्णन करने से मेरा उद्देश्य यही है कि विवाह केवल रूप-सौंदर्य का व्यापार नहीं। रूप अपदार्थ—नाचीज़ तो नहीं है। रूप और सौंदर्य स्त्री में वांछनीय है, परंतु ये अस्थायी तत्त्व विवाह-जैसे स्थायी संबंध के आधार नहीं बन सकते। केवल रूप के मोह में पड़कर विवाह करना मूर्खता है।

रूप-सौंदर्य का यौवन से धूप-छाया सा घनिष्ठ संपर्क है; इसलिये यह अटल सत्य है कि जब स्त्री का यौवन ढल जायगा, तब रूप में भी स्वाभाविकतया अंतर आ जायगा। अतः जो व्यक्ति केवल इसी आधार पर यह संबंध स्थिर करते हैं, वे यौवन ढल जाने पर, रूप-माधुर्य न्यून हो जाने पर संबंध-विच्छेद भी कर सकते हैं।

बहन, मैं यह जानती हूँ कि आर्य-नारियाँ गुणों की क़द्र करना जानती हैं। वे अपने जीवन-सहचर में विद्वत्ता, बुद्धि, साहस, दया, लगन, प्रेम, धीरता, धर्मपरायणता, सहानुभूति, सहयोगिता आदि मानवीय उदात्त गुणों को देखना चाहती हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम भी एक आर्य-ललना के आदर्श को सदैव अपने सामने रक्खोगी,

और विवाह को आध्यात्मिक संबंध में परिणत करने का प्रयत्न करोगी।

मैं अपने अनुभव से यह जानती हूँ कि विवाह से पूर्व कुमारियों के कोमल हृदय में अपने भावी जीवन के संबंध में नानाविध कल्पनाएँ अपना घर बना लेती हैं। अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे वे ऐसे सुंदर भवन खड़े कर लेती हैं कि उन्हें देखकर 'विवाह' को एक मनोविनोद या खिलवाड़ समझने लगती और अपने वैवाहिक कर्तव्यों को भुला देती हैं। शांता, तुम यह विचार कदापि न करना कि ससुराल में तुम्हें वैसा ही सुख-आनंद मिलेगा, जैसा मा की गोद में मिला है।

अब तक तुम अपने माता-पिता के गृह में बड़े लाड़-प्यार से रही। मा ने तुम्हें कोई कष्ट अनुभव करने का अवसर नहीं दिया। तुम जानती हो, तुम्हारे सुख के लिये तुम्हारे माता-पिता ने अपने कितने सुख और आनंद का बलिदान किया है। तुम कष्ट-सहन का जीवन जानती नहीं। पर अपनी प्रिय मा के जीवन से तुम्हें शिक्षा लेनी चाहिए। अब तुम इस योग्य हुई हो कि निज गृह का निर्माण कर सको। तुम्हें अपना घर बनाने के लिये वैसी ही तपस्या और वैसा ही त्याग करना पड़ेगा, जैसा तुम्हारी मा ने किया है। अब तुम्हारे लड़कपन और स्वतंत्र जीवन का अंत हो जायगा, और उनके स्थान पर सहनशीलता, कष्ट, तप, व्रत और सेवा का जीवन भोगना पड़ेगा। ससुराल में जाकर तुम्हें अपने सुख का चिंतन न करना होगा। तुम्हारे सुख, तुम्हारे आनंद और तुम्हारी प्रसन्नता का दायित्व तो तुम्हारे पति के कंधों पर है। तुम्हें तो यावज्जीवन इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि मैं अपने प्राणेश्वर और परिजनों को कैसे संतुष्ट और सुखी रक्खूँ। तुम्हारा आचरण सबों को प्रिय और तुम्हारे वचन सबों को मधुर लगें, ऐसा यत्न करना चाहिए। तुम्हें एक विद्वान् लेखक के निम्न-लिखित शब्दों को अपने हृदय-पट पर लिख लेना चाहिए—

"विवाहिता स्त्री उस कुसुम-कली के समान है, जो देवता के चरणों पर चढ़ चुकी है, और अपने हृदय की सारी सुगंध देवता के मंदिर में बिखराती है।"

शांता, मैं तुम्हारे विवाह के निमंत्रण को स्वीकार करती हूँ, और

ऐसा करते समय मेरे हृदय में जितना उल्लास होता है, उसे यह मूक लेखनी इस कागज पर कैसे उतार सकती है। अब संध्या के पाँच बज गए। तुम्हारे जीजाजी कोर्ट से आते होंगे; मुझे उनके स्वागत की तैयारी करनी है, और फिर भोजन भी तैयार करना पड़ेगा। आज इतना ही।

तुम्हारी बहन
इंदिरा

दांपत्य विज्ञान की शिक्षा

शांति-निवास, आगरा
८ मार्च, १९३७

दुलारी बहन,

आज तुम्हारा पत्र मिला। तुमने मेरे पिछले पत्र को बड़े ध्यान-पूर्वक पढ़ा है, और अब इस विषय की ओर तुम्हारी दिलचस्पी भी हो गई है। तुमने अपने पत्र में लिखा है—"मुझे ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे मैं अपने गृहस्थ-जीवन को सफल बना सकूँ।" प्रत्येक नारी की यह स्वाभाविक आकांक्षा है। परंतु इस आकांक्षा को पूरा करने के लिये कोई प्रबंध नहीं। यद्यपि गृह-जीवन के उत्तरदायित्व महान् हैं, किंतु उन्हें पूरा करने के लिये, विवाह से पूर्व, कोई समुचित प्रबंध नहीं किया जाता। जिस प्रकार बायबिल के ईश्वर (God) ने आदम और हव्वा को अदन के बाग में रखकर 'ज्ञान-वृक्ष' के लाभ से वंचित रक्खा— उन्हें पूर्ण अज्ञानांधकार में रक्खा, वैसे ही आजकल के माता-पिता अपनी संतानों— पुत्र-पुत्रियों—को दांपत्य विज्ञान से अनभिज्ञ रखते हैं। परंतु यौवनारंभ होने पर लड़के-लड़कियों के हृदय में इन रहस्यों को जानने और समझने के लिये तीव्र इच्छा पैदा होती है, और वे अपने सखा-सहेलियों से थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, किंतु मा-बाप से छिपकर। मा-बाप अपनी संतानों को 'स्त्री-पुरुष-विषय-संबंधी ज्ञान' से वंचित रखकर यह सोचते हैं कि ऐसा करने से वे पवित्र रहेंगे; परंतु यह बड़ी भूल है। जब मा गर्भवती होती है, तो उसके शारीरिक परिवर्तनों को देखकर उसकी लड़की उनका कारण जानना चाहती है। वह ऐसे प्रश्न करती है, जिनसे उसे उपयुक्त ज्ञान मिल जाय। परंतु संकोचशीला मा उसे चुप कर देती है—उसके स्वाभाविक प्रश्नों का उत्तर नहीं देती।

यह अत्यंत दुःखप्रद स्थिति है कि विद्यालयों और कॉलेजों में [illegible] और गोल आदि का तो ज्ञान कराया जाता है;

परंतु गार्हस्थ्य विज्ञान (Domestic Science) की शिक्षा नहीं दी जाती। यद्यपि कन्या-पाठशालाओं में लड़कियों के पाठ्य क्रम में सिलाई, कसीदा, संगीत और पाक-शास्त्र आदि विषय सम्मिलित हैं, परंतु उन्हें इन विषयों का नाम-मात्र का ज्ञान कराया जाता है। उन्हें इन विषयों की पूर्ण शिक्षा नहीं मिलती। यही कारण है कि कॉलेजों और स्कूलों की लड़कियाँ जब विवाहित जीवन में प्रवेश करती हैं, तो उन्हें नई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनेक बहनें गृहस्थी के कार्यों को स्वयं अपने हाथों से करना नीच कार्य समझती हैं। भोजन बनाना महराजिन का और चौका-बर्तन करना महरी का काम समझा जाता है। इस हीन मनोवृत्ति को पैदा करनेवाली आजकल बालिका-विद्यालयों में दी जानेवाली दूषित शिक्षा-पद्धति है, जो लड़कियों को सुगृहिणी बनाने के स्थान में नाम-मात्र की शिक्षिता बनाती है!

बहन, काम विज्ञान का विवाहित जीवन से घनिष्ठ संबंध है। परंतु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इसकी शिक्षा का न तो विद्यालय में प्रबंध है और न घर पर ही। मैं भी विवाह से पूर्व, इस ज्ञान से विहीन थी। परंतु विवाह के बाद तुम्हारे जीजाजी ने मुझे इस विषय की शिक्षा दी। मुझे इस विषय का हिंदी और अँगरेजी का उत्तम साहित्य लाकर दिया। योरप और अमेरिका में काम-विज्ञान की शिक्षा का समुचित प्रबंध है।

काम विज्ञान-संबंधी साहित्य का वहाँ सबसे अधिक प्रचार है और कुछ विशेष विश्वविद्यालयों में दांपत्य विज्ञान की शिक्षा का भी प्रबंध है। पाश्चात्य देशों में तलाकों (Divorces) की बढ़ती हुई विशाल संख्या ने समाज-विज्ञान वेत्ताओं की आँखें खोल दी हैं, और अब वे दांपत्य जीवन के सुधार की ओर संलग्न हो गए हैं। फलतः अमेरिका के तीन विश्वविद्यालयों में प्रेम-विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी है। इंडियानापोलिस की बटलर-युनिवर्सिटी, उत्तरी कैरोलिना के गिलफोर्ड कॉलेज और कनेक्टिकट के महिला विद्यालय में प्रेम विज्ञान की शिक्षा दी जाती है, और शिक्षा-समाप्ति पर उपाधि-वितरण भी किया जाता है। बटलर-युनिवर्सिटी की ओर से इस विषय में जो वक्तव्य निकला है, उससे साफ़ स्पष्ट होता है कि यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण है—

"हमारे युग का प्रधान रोग, जो समाज-हितैपियों के हृदय को मथ रहा है, तलाक़ों की संख्या की अबाध वृद्धि है। यह निश्चय है कि समाज की नींव दांपत्य जीवन पर स्थित है, और यह विवाहित जीवन घोर संकट में पड़ गया है। इसका कारण यह है कि हमारे युवक-युवतियाँ दांपत्य जीवन के लिये तैयार नहीं किए जाते। विश्व-विद्यालय का कर्तव्य यही नहीं है कि वह अपने छात्रों को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दे, बल्कि उसका यह भी धर्म है कि उन्हें जीवन के संकट-पूर्ण पथ का सामना करने के लिये तैयार करे। हमारी तरुण पीढ़ी के लिये सबसे महत्त्व-पूर्ण समस्या विवाहित जीवन को आनंदमय बनाने की है। यदि ऐसा हो जाय, तो मानव-समाज की समृद्धि बढ़े और सारा संसार सुख-सागर में गोते लगाने लगे *।"

उपर्युक्त विश्वविद्यालयों में प्रेम-विज्ञान के अंतर्गत निम्न-लिखित विषयों की शिक्षा दी जाती है—१. गृह-प्रबंध (Domestic Sciencc) २. शरीर-विज्ञान (Physiology) ३. प्रेम का मनस्तत्त्व (Psycho-analysis of Loves) ये विषय विवाह से पूर्व प्रत्येक युवती को जानने चाहिए। जो इनकी शिक्षा प्राप्त नहीं करतीं, उनका जीवन नीरस रहता है।

हमारे यहाँ, प्राचीन समय में, भारतवर्ष में काम-विज्ञान की शिक्षा का समुचित प्रबंध था। गुरुकुलों में आचार्य और आचार्या ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को काम-विज्ञान की शिक्षा देते हैं। आज भी संस्कृत-भाषा में काम-विज्ञान पर अनेकों उत्तम ग्रंथ विद्यमान हैं, जो इस बात की साक्षी देते हैं कि प्राचीन समय में आजकल के समान यह विषय घृणित या गोपनीय नहीं समझा जाता था। वात्स्यायन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ कामसूत्र में स्पष्ट लिखा है—

"नवयुवतियों को इस कामसूत्र का अध्ययन करना चाहिए।"

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में स्त्रियों को काम-विज्ञान की शिक्षा के विषय में स्पष्ट आदेश दिया है—

"स्त्री को कामसूत्र या उसके एक भाग की शिक्षा क्रियात्मक रूप से किसी विश्वास-पात्र सहेली से प्राप्त करनी चाहिए। उसे काम शास्त्र की ६४ प्रक्रियाएँ गुप्त रूप से सीख लेनी चाहिए। उसके गुरु निम्न-

* 'विश्वमित्र' ऑक्टोबर १६३३, पृष्ठ ४४ (कलकत्ता)

लिखित व्यक्तियों में से होने चाहिए—१—धात्री (Nurse) की विवाहिता पुत्री, २—सहेली, जो विश्वास-पात्रा हो, ३—मौसी और ४—बूढ़ी नौकरानी या अपनी बड़ी बहन, जिस पर हमेशा विश्वास किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ६४ कलाओं का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए *।"

शांता, जो मा अपनी लड़कियों को काम-विज्ञान की प्रारंभिक शिक्षा नहीं देतीं, वे वास्तव में उनके स्वास्थ्य और सुखी जीवन के लिये बड़ा अहित करती हैं। मैंने अपनी आँखों बहुत-सी लड़कियों को देखा है, जो रजोदर्शन को रोग समझती हैं, और अपनी मा एवं सखी सहेलियों को भी बतलाने में संकोच करती हैं। उन्हें अज्ञ माताएँ यह भी नहीं बतलातीं कि रजोदर्शन नारीत्व का लक्षण है; इससे किसी प्रकार के भय की आशंका न करनी चाहिए। यौवनारंभ (Puberty) के समय नवयुवती के शरीर में विविध परिवर्तन होते हैं, और साथ ही मानसिक परिवर्तन भी होते हैं, परंतु उस अबोध को इनके रहस्य का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

भारत में बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में लड़कियों में यौवनारंभ हो जाता है, अर्थात् इस आयु के उपरांत उनमें नारी-लक्षणों का विकास होने लगता है। यह उम्र बड़ी नाजुक है। इस वय में मा को बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से अपनी पुत्री को आवश्यक ज्ञान कराना चाहिए। नवयुवती के जीवन में तेरह से सोलह वर्ष तक का समय बड़ा परिवर्तनकारी होता है। इस समय वह ऐसा अनुभव करने लगती है, मानो एक नवीन जीवन में प्रवेश कर रही हो, जहाँ समस्त वातावरण, भाव, विचार और कल्पना सर्वथा नवीन प्रतीत होते हैं। शरीर एक अपूर्व कांति और दीप्ति से जगमगाने लगता है, मन में अपूर्व भाव और विचार विकसित होने लगते हैं। शरीर की आश्चर्य-जनक वृद्धि होती और समस्त अंग प्रत्यंगों का विकास शरीर को सुंदर एवं सुडौल बना देता है। शरीर की गति में अजीब लोच आ जाता है। कपोलों पर कश्मीरी सेब जैसी लालिमा छा जाती है; होठों में भी स्वाभाविक लालिमा दिखाई पड़ती है। जननेंद्रियों

* Vide The Kamsutra of Vatsyayana By H.G Gambes: Brijmohan & Co, Amritsar 1931 p. 43.

(Generative Organs) में भी विकास और वृद्धि होने लगती है। अब नवयुवती को यौवन-तरंग में एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति और क्रियाशीलता का अनुभव होने लगता है। इसी समय केश और कुचों की वृद्धि होती है। बाह्य जननेंद्रिय के निकट लोम उत्पन्न होने लगते हैं। और, इसी समय प्रतिमास नवयुवती की योनि से रक्तप्रवाह होता है, जिसे 'मासिक धर्म', 'रजोदर्शन', 'ऋतुकाल' आदि नामों से पुकारते हैं। ये समस्त बाह्य परिवर्तन आंतरिक परिवर्तनों के फल हैं। स्त्री की आंतरिक जननेंद्रिय (Internal organ) में डिंब-ग्रंथियाँ (Ovaries) होती हैं। ये ग्रंथियाँ गर्भाशय (Utrus) के दोनो ओर होती हैं। गर्भाशय योनि-नलिका से जुड़ा रहता है। यौवनारंभ के समय इन डिंब-ग्रंथियों में एक प्रकार का द्रव (Secretion) उत्पन्न होने लगता है, जो शरीर के रक्त में मिलकर नवयुवती के इन शारीरिक परिवर्तनों और वृद्धि का कारण होता है।

मा को इस समय यह बतलाना चाहिए कि जननेंद्रिय का कार्य अत्यंत महान् और पवित्र है। यह संतानोत्पत्ति का साधन है। अतः समय से पूर्व इस यंत्र का दुरुपयोग करना शरीर का नाश करना है। यौवनारंभ हो जाने पर जननेंद्रिय में एक प्रकार की कृत्रिम उत्तेजना होने लगती है; परंतु इस उत्तेजना को अधिक न बढ़ने देना चाहिए।

शांता, मासिक धर्म का महत्त्व भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मासिक धर्म की गलतियों से स्त्री को आजीवन कष्ट भोगने पड़ते हैं। मासिक धर्म नारी के शरीर और उसके स्वास्थ्य का अपूर्व लक्षण है। हमारे देश में बारह-तेरह वर्ष की आयु में मासिक धर्म प्रारंभ हो जाता है और चालीस-पैंतालीस वर्ष तक बराबर रहता है। विशेष कारणों से इस आयु तक पहुँचने से पूर्व ही बंद हो जाता है। मासिक धर्म के समय किन नियमों को पालना चाहिए, यह विषय बड़े महत्त्व का है, इसलिये किसी पृथक् पत्र में इसके संबंध में लिखूँगी।

यौवनारंभ होने पर उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त एक बात और है, जिसके विषय में माताओं को सावधान रहना चाहिए। माताओं को यह बतलाना चाहिए कि लड़कियों का पुरुषों के प्रति कैसा आचरण हो। बारह वर्ष से पूर्व का जीवन और ही प्रकार का होता है। लड़की अबोध होती है; उसमें काम-भाव की जागृति नहीं होती।

परंतु मासिक धर्म प्रारंभ हो जाने के बाद कन्या नवयुवती बन जाती है, और उसमें यौवन के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसलिये इस आयु में नवयुवती को अपने शरीर की पवित्रता के लिये यत्नशील रहना चाहिए। शरीर को उत्तेजनशील होने से बचाए रखना चाहिए। पुरुषों के साथ वार्तालाप, व्यवहार और आचरण करते समय मर्यादा का पालन करना चाहिए। शरीर, मन और आत्मा की पवित्रता की रक्षा का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यह अपरिपक्वावस्था होती है, शरीर और मन विकसित दशा में होते हैं; इसलिये बुरे विचारों का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ जाता है। शांता, तुम्हारी वय अब सोलह वर्ष की हो गई, और तुम अब पाणिग्रहण-संस्कार का सौभाग्य प्राप्त करोगी, इसलिये तुम्हारे वास्ते दांपत्य विज्ञान की शिक्षा तो अनिवार्य ही है।

आज मैं गृह के काम-काज में कुछ थक-सी गई हूँ, इसलिये अब यहीं समाप्त करती हूँ।

तुम्हारी स्नेहमयी सहेली
इंदिरा

३

ससुराल

शांति-निवास, आगरा
१५ मार्च, १६३७

प्यारी बहन शांता,

तुम मेरे पत्र बड़ी दिलचस्पी से पढ़ती हो। तुम्हें उनमें रस और आनंद मिलता है। ये सब शुभ लक्षण हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि तुम इस विषय में रस लेने लगी हो। तुमने अपने पत्र में लिखा है—

"बहनजी, ज्यों-ज्यों विवाह का दिन समीप आता जाता है, मेरी चिंताएँ बढ़ती जाती हैं। जब मैं यह सोचती हूँ कि विवाह के बाद निज गृह छोड़ पर-घर जाऊँगी, तो मेरा हृदय काँप जाता है। मैं एक नई दुनिया में जाऊँगी, जहाँ न मेरा कोई भाई होगा, न बहन; न मुझे अपनी प्यारी मा का प्यार मिलेगा न पिता का दुलार। फिर वहाँ विमला, मालती और कुसुम-जैसी प्यारी सहेलियाँ भी न मिलेंगी। तुम्हीं कहो, मैं ऐसे विचित्र संसार में कैसे रह सकूँगी?"

शांता, अब तुम ससुराल के स्वप्न देखने लगी हो। इसमें कोई बुराई नहीं, यह संसार का नियम है। जो जिस क्षेत्र में पदार्पण करना चाहता है, वह पहले उसकी सुंदर-से-सुंदर कल्पना करने लगता है। जब विद्यार्थी कोलेज के बी० ए० में पढ़ता है, तब अपने भावी जीवन के कैसे सुंदर स्वप्न देखता है—यह यदि तुम देखना चाहो, तो सहज ही देख सकती हो। विवाह के उपरांत ससुराल ही पत्नी के जीवन-नाटक की रंगभूमि है। मातृगृह का मोह बड़ा है, और माता की ममता तो जगत्-प्रसिद्ध है। पर धन्य है इस विवाह-संस्था को, जो मा की ममता तोड़कर पर-घर में प्रेम-सरिता प्रवाहित करती है। यह कैसा विचित्र विधान है कि विवाह से पूर्व पुत्री के लिये जो 'पर-घर' होता है, वह विवाहोपरांत 'ससुराल' हो जाता है, और अंत में वही 'निजगृह' बन जाता है, और वह बन जाती है उसकी स्वामिनी।

शांता बहन, तुम्हें यह याद होगा कि जब मा अपनी पुत्री से अप्रसन्न हो जाती है, तो कहती है —"तुझे ससुराल भेज दूँगी, और फिर वर्षों तक तेरा नाम भी न लूँगी !" मेरी मा ने मुझे इन शब्दों में एक बार नहीं, हजारों बार आशीर्वाद दिया है, और मैं अनुभव से जानती हूँ, चाची ने भी तुमसे ऐसा ही कहा होगा। इन शब्दों को सुनकर 'ससुराल' के नए संसार से अनभिज्ञ लड़की के कोमल हृदय पर कैसा बुरा चित्र खिंचता है, यह मैं भली भाँति अनुभव करती थी। मैं स्वयं ससुराल में आने से पहले ससुराल को न-जाने क्या समझती थी। घंटों अपने नेत्रों से आँसुओं की धारा बहाया करती थी। कल्पना करती थी कि ससुराल कोई ऐसा बंदीगृह है, जहाँ ऐसी लड़कियों को रक्खा जाता है, जो मा का कहना नहीं मानतीं। आज मैं इस कल्पित चित्र को याद कर अपनी अज्ञानता पर जी भरकर हँसती हूँ।

जिस गृह में जन्म ग्रहण किया, हँसते-खेलते शिशु-काल बिताया, मा की स्नेहमयी गोद में दुलार से दिन बिताए, उसकी स्मृति सहज ही कैसे नष्ट हो सकती है। पर शांता, मैं सच कहती हूँ, सच्चे दांपत्य प्रेम के सामने माता का मोह विस्मृत हो जाता है। नारी प्रेम की आकांक्षा करती है। यदि वह मातृगृह में है, तो उसे वात्सल्य-प्रेम की और यदि पति-गृह में है, तो दांपत्य प्रेम की अपेक्षा है।

ससुराल में नववधू का बड़े उत्साह और प्रेम से स्वागत किया जाता है। जब ससुराल में नववधू का आगमन होता है, तो परिवार की महिलाएँ द्वार पर एकत्र हो जाती हैं—मंगल-गान करती हैं। गृह-प्रवेश करने के समय वर-वधू का तिलक किया जाता है, और वयोवृद्ध स्त्रियाँ आशीर्वाद देती हैं। बधाई और उत्सव का खूब समारोह रहता है, परंतु इस समय बड़े धैर्य और सहनशीलता की आवश्यकता है। शांता, तुम्हें इस अवसर पर मौन-व्रत ग्रहण कर लेना होगा। तुम्हें देखने के लिये परिवार और बस्ती की सब स्त्रियाँ एवं लड़कियाँ आएँगी, जिनमें वृद्धा, युवती, शिक्षिता, अशिक्षिता, आधुनिकता-प्रिय और प्राचीन विचारों की होंगी। ये स्त्रियाँ इस समय नववधू के शरीर, स्वास्थ्य, रूप, वय, आचरण एवं वस्त्राभूषण पर नाना प्रकार की टीका-टिप्पणी करने लगती हैं। शायद वे यह नहीं सोचतीं कि इन आलोचनाओं का इसके कोमल हृदय पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि सौभाग्य से वधू शिक्षिता हुई,

तो अपढ़ स्त्रियों को फ़बतियाँ कसने और व्यंग्य-बाण छोड़ने का सुअवसर हाथ लग जाता है। "बहन, नाम बड़े, दर्शन थोड़े !" "जीजी, यही कहावत यहाँ ठीक उतरती है कि ऊँची दूकान फीका पकवान।" "सुनते हैं, अँगरेजी पढ़ी है; देखें, कैसे घर-गिरिस्ती चलाती है।" "बहनजी, हमने तो खूब देख लिया है, इन स्कूल में पढ़ी लड़कियों का चाल-चलन खराब होता है—पति पर नौकर की तरह हुक्म चलाती हैं।" "दीदी, आजकल कलजुग है, ऐसे ही मर्द रह गए हैं; अब पहले-जैसे रीति-रिवाज कहाँ रहे।" "पूरी मेम है ! देखो, हाथों में न कड़े हैं न पैरों में छड़े और झाँझन।"

ये वाक्य ऐसे हैं, जिन्हें सुनकर स्कूल की लड़कियाँ रह नहीं सकतीं। उनका स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वे बहस और दलील करने लगती हैं। स्कूल की लड़कियाँ फ़ौरन ही आधुनिक युग के आदर्शों का बखान और अनावश्यक गहनों की बुराइयाँ फ़ौरन करने लगती हैं। परंतु, शांता, यह स्थान तुम्हारे 'लेक्चर' देने का नहीं। इस समय तुम्हें सबकी सुन लेनी चाहिए। इस समारोह के उपरांत नववधू के सामने 'ससुराल' का यथार्थ चित्र अंकित होता है। सास-ससुर, देवर-देवरानी, जेठ-जेठानी, ननँद आदि समस्त पति के संबंधियों के हृदय में नववधू के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार की धारणाएँ बन जाती हैं। ये सब नववधू से कैसे व्यवहार और आचरण की आशा करते हैं—यह भी ये अपने मन में स्थिर कर लेते हैं। गृह के सभी परिजन उससे अपनी-अपनी आशाएँ बाँधते और यह चाहते हैं कि वह उनकी आशा-लता को पुष्पित और फलवती करे। सास यह चाहती है कि मेरी वधू मेरी आज्ञा पालन करे, मेरी सेवा करे, और गृह के सब काम-काज चतुराई के साथ करे, जिससे सब लोग उसकी प्रशंसा करें। वह मेरे सामने आलसी बनकर न बैठे। मैं कोई काम करने लगूँ, तो वह तुरंत ही उस काम को अपने हाथ में ले ले। मैं कहूँ—"न-न बेटी, काम करने के लिये सारी जिंदगी पड़ी है; मैं जब काम न कर सकूँ; तब तुम्हीं तो किया करोगी। अब मैं काम किए लेती हूँ, तुम विश्राम कर लो।" तो वधू जवाब दे—"माजी, मैं इसे तुरंत कर डालूँगी। तुम बैठकर आराम करो। भला, तुम काम करो, और मैं बैठी रहूँ—यह तो ठीक नहीं।" इस प्रकार सास अपनी आशा पूरी होते देख प्रसन्नता से फूली नहीं समाती !

प्रातःकाल सबसे पहले उठकर सारे गृह की स्वच्छता, बरतन आदि की सफ़ाई, सब सामान और वस्तुओं को यथास्थान सजाकर रखना, भोजन बनाना और भोजन परोसकर परिजनों को बड़े आदर और प्रेम से जिमाना आदि ऐसे कार्य हैं, जिन्हें नववधू को करते देख सास को आंतरिक प्रसन्नता होती है। परिवार के सभी जनों के साथ उनकी मर्यादा और पद के अनुसार, यथायोग्य, सादर, प्रेम-पूर्वक व्यवहार करना समस्त परिवार पर शासन करने का मूल मंत्र है!

शांता, तुम ईश्वर पर विश्वास रखकर और अपने प्रेमी पति का प्रेम प्राप्त कर इस कठिन उत्तरदायित्व को आसानी से पूरा कर सकोगी। किसी प्रकार निराश होने की आवश्यकता नहीं, और न घबराने से ही काम चलेगा। शांता, तुम अपनी जेठानी के साथ अपनी बड़ी बहन के समान बर्ताव करना। उसके बच्चों को बड़े दुलार से रखना। देवरानी तुम्हारी छोटी बहन होती है। जैसे तुम कमला को प्यार से रखती हो, वैसे ही अपनी देवरानी को प्यार से रखना। अपनी ननँदों के साथ भी बहनों के समान व्यवहार करना। सास तो मा का नवीन रूप है। जिस प्रकार तुम माता का आदर-सम्मान करती हो, जैसी प्रगाढ़ श्रद्धा मा में है, वैसी ही अपनी सास में रखना। भूलकर भी अप्रिय और गर्व की बात न कहना। जो तुमसे वय में बड़े हों—चाहे स्त्री हो या पुरुष—उनसे अधिक व्यर्थ बातें और बहस न करना। कारण, छोटी-सी बात भी बहस करने से विवाद का रूप ग्रहण कर लेती है। यदि सास, जेठानी और ननँद कभी कोई कटु बात भी कहें, तो तुम वैसा ही कड़ुआ-जवाब न देना। बात सुनकर उसका वैसा ही फ़ौरन् जवाब देना कोई अच्छा गुण नहीं! प्रिय बहन, तुम्हारा जीवन सादा और सेवामय होना चाहिए। सेवा का फल मधुर होता है। सास, जेठानी और ननँद अवसर वधू को उला-हनें दिया करती और मायके के बारे में उलटी-सीधी बातें कहती हैं। पर यदि वधू परिश्रमी है, और अपनी सेवा से उन्हें संतुष्ट रखती है, तो वे उसे उलाहनें नहीं देतीं। तुम सबसे सदा सचाई और मधुरता का व्यवहार करना। बुराई और चुग़ली आदि दुर्गुण मूर्ख स्त्रियों में अधिक पाए जाते हैं। एक की बुराई दूसरी से करके, उनमें मनो-मालिन्य उत्पन्न कराके झगड़ा पैदा करा देना उनका व्यवसाय है।

इसलिये इस बुराई से सदैव दूर रहना। यदि किसी से कोई

बुराई है, तो उसके निवारण का उपाय यह नहीं कि उसकी जगत् में चर्चा करके उसे बदनाम किया जाय, प्रत्युत यत्न-पूर्वक उसे दूर किया जाय। व्यवहार में सहनशीलता, जीवन में सेवा-भाव, वचन और कर्म में सचाई। गुरुजनों के प्रति आदर-भाव, पतिव्रत, वाणी की मधुरता और विनयशीलता आदि ऐसे गुण हैं, जिनसे तुम ससुराल में शासन कर सकती और अपना जीवन सुखी बना सकती हो। तुम ससुराल का एक ऐसा आवश्यक अंग बन जाओ कि तुम्हारी वहाँ से एक-दो दिन की पृथकता भी अनुभव होने लगे। सब लोग तुम्हारी प्रशंसा करें।

प्रिय बहन शांता, यदि तुमने मेरे बतलाए उपाय के अनुसार कार्य किया, तो तुम बहुत शीघ्र 'पर-गृह' को 'निज गृह' बना लोगी। तुम ससुराल में सच्चे अर्थ में बहूरानी बनकर दीप-शिखा की भाँति गृह को जगमगा दो, यही मेरी कामना है।

आज रविवार है। तुम्हारे जीजाजी के मित्र आए हैं। मैं उनके लिये जल-पान तैयार करने जा रही हूँ, इसलिये अब लेखनी को यहीं विश्राम देती हूँ।

तुम्हारी स्नेहमयी
इंदिरा

सुहाग-रात

शांति-निवास, आगरा
२२ मार्च, १९३७

प्रिय शांता,

तुम्हारा विवाह अति निकट है। मैं तुम्हारे विवाहोत्सव में सम्मिलित न हो सकूँगी, इसका मुझे खेद है। मैं इस पत्र द्वारा तुम्हें विवाहोपलक्ष्य में हृदय से बधाई देती हुई यह कामना करती हूँ कि तुम्हारा दांपत्य जीवन सुखी बने, और तुम अपने पति के हृदय का हार बनकर रहो। वह तुम्हें देवी-प्रतिमा की भाँति अपने हृदय-मंदिर में धारण कर प्रतिदिन पूजा किया करें। तुम उनके हृदय पर शासन करो, यही मेरी एकांत कामना है। शांता, तुम्हारा सौभाग्य अमर रहे।

नव-जीवन—विवाह-संस्कार जीवन में एक अपूर्व घटना है। दो अपरिचित हृदयों का संयोग इसी का फल है। संस्कार के समय, विवाह-मंडप के नीचे, पाणिग्रहण की क्रिया संपादन की जाती है—वधू के माता-पिता कन्या और वर के हाथों को जोड़कर, उन पर हल्दी डालकर अविरल जल-धारा गिराते हैं, तब वर-कन्या एक नूतन भाव का अनुभव करते हैं। पाणिग्रहण के बाद वर-कन्या एक दूसरे के अधीन हो जाते हैं। उन थोड़े-से क्षणों में शरीर और हृदय में एक अपूर्व अनुभूति का अनुभव होता है, जिसके आवेश में वे अपने को दो से एक अनुभव करते हैं। इस समय वर-कन्या में एक दूसरे के लिये एक प्रकार का स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न हो जाता है, जिसके अस्तित्व में वे अपने को दो शरीरों में एक हृदय अनुभव करते हैं। बस, इसी समय से वर-कन्या का नव-जीवन प्रारंभ होता है। यह नूतन जीवन नई भावनाओं, नवीन कल्पनाओं और नव-आशाओं को साथ लेकर शुरू होता है। विवाहोपरांत पति-पत्नी का प्रथम मिलन बहुत महत्त्व-पूर्ण है। उनके सारे जीवन का सुख इसी प्रथम मिलन की सार्थकता पर निर्भर है। प्रथम दर्शन में पति-

पत्नी अपने हृदय में परस्पर जो दृष्टिकोण निर्माण करते हैं, और इस समय उनके हृदय में जो भाव और विचार उदय होते हैं, उनका उन दोनो के भावी जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। तुमने मेरे पिछले पत्र का उत्तर देते हुए लिखा है—

"बहनजी, तुमने ससुराल का जो चित्र खींचा है, वह तो बड़ा अच्छा है। सास-ससुर, देवर-जेठ, जेठानी-देवरानी, ननँद आदि के प्रति मुझे कैसा आचरण करना चाहिए, यह सब मुझे बतलाकर तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। यदि तुम मुझे इतनी आत्मीयता के साथ इतने रोचक ढंग से न बतलातीं, तो सच मानिए, बड़ा अनर्थ होता। तुम तो मेरी आचार्या हो। इसलिये मुझे तुमसे अपने हित की गुप्त से गुप्त बात भी पूछने का साहस हो गया है। तुमने 'उनके' बारे में कुछ भी नहीं लिखा। प्रथम मिलन के समय मैं उनके प्रति कैसा व्यवहार करूँ, यह तो मैं जानती ही नहीं।

"मैं एक ऐसे व्यक्ति से, जिसके साथ मेरा पहले कभी साक्षात्कार नहीं हुआ, कैसा व्यवहार करूँ, जिससे वह मुझसे प्रसन्न हों—यह मेरे लिये बड़ी विकट समस्या है। बहनजी, इस विकट समस्या को अवश्य सुलझा देना।"

शांता, तुम अपने पति से मिलने के लिये बड़ी उत्सुक प्रतीत होती हो। ऐसी प्रबल इच्छा और ऐसा चाव! अभी तो तुमने उनका मुखड़ा भी नहीं देखा। कहीं उनके प्रेम को पाकर हमें बिसार मत देना। अस्तु। अब मैं तुम्हारी विकट समस्या पर अपना अनुभव लिखना चाहती हूँ, जिससे तुम्हें बड़ी सहायता मिलेगी।

सौभाग्य-रात्रि

सौभाग्य-रात्रि शुद्ध संस्कृत-शब्द है, परंतु लोक में यह 'सुहाग-रात' कहा जाता है। 'सुहाग-रात' शब्द का प्रचार सभ्य-समाज में नहीं पाया जाता। इस शब्द के पीछे कामीजनों ने ऐसी घृणित भावनाएँ जोड़ दी हैं कि सभ्य पुरुष के मुख से इसके उच्चारण में संकोच की गंध आने लगती है। और, जब इस शब्द का उच्चारण किया जाता है, तब एक अवांछनीय और घृणित-सा दृश्य, चल-चित्र की भाँति, मानसिक चक्षुओं के सामने घूम जाता है। परंतु, वास्तव में, सुहाग-रात एक ऐसा भाव-सूचक सुंदर शब्द है, जिसके साथ

दांपत्य जीवन के उच्च आदर्श समन्वित हैं। सुहाग-रात वह सौभाग्य की रात्रि है, जब पत्नी प्रथम बार पति के दर्शन करती है! पति-दर्शन के साथ ही उसका सौभाग्य-सूर्य उदय होता और उसके जीवन को प्रकाश-युत करता है। इसी समय से पत्नी 'सौभाग्यवती' कहलाती है! इसमें संदेह नहीं कि प्रथम मिलन के समय पत्नी को स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण संकोच होता है। मुझे अपनी सुहाग की रात अपने नाम की तरह याद है। उस समय का चित्र आज भी ज्यों-का-त्यों मेरे मस्तिष्क में वर्तमान है। मैं उस दिन अपने हृदय में न-जाने क्या-क्या सोच रही थी, और दिन-भर इस प्रश्न ने परेशान किया कि मैं अपने प्राणेश के सामने किस प्रकार मुँह खोल सकूँगी, परंतु मेरे पतिदेव ने मेरी सब कठिनाइयाँ दूर कर दीं। उनके प्रेम-दान से मेरे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा पैदा हो गई, और यदि भूलती नहीं, तो मेरे हृदय में प्रतिदान और आत्मसमर्पण के भाव भी उदय होने लगे थे। मुझे ऐसा लगा कि यही मेरे सर्वस्व हैं, और उनके श्रीचरणों में अपना सब कुछ निछावर कर देने में ही मेरा हित है।

नववधू की कल्पना

जब सुहाग-रात-संबंधी उत्सव समाप्त हो जाता है, तब गृह के सब लोग सो जाते हैं। उस समय नववधू को स्त्रियाँ पति के 'शयन-गृह' में भेज देती हैं। यदि उस समय पति अपने पलँग पर नहीं होते, तो वह पलँग पर शांति-पूर्वक लेटी हुई भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पना किया करती है। उसे यह नहीं बतलाया जाता कि यहाँ उसे क्यों भेजा गया है, और यह शयन-गृह किसका है! परंतु वह शयन-गृह के वातावरण से यह सहज जान लेती है कि यह 'उनके' सोने का कमरा है। अब उसके मन में पति के संबंध में न-जाने क्या-क्या भाव पैदा होते हैं, एक भाव विलीन होता है, दूसरा उदय होता है। इस प्रकार भाव-वारिधि में डूबते-उतराते हुए उसे कुछ अस्पष्ट, पर निश्चित रूप में यह आभास होता है कि पति से जो आचरण करना होगा, उसका कुछ-न-कुछ संबंध 'काम' (Sex) से अवश्य है।

काम-भाव की कुछ अस्पष्ट-सी झलक उसकी विचार-धारा को रँग देती है। इतने में ही पति का आगमन हो जाता है, और वह तुरंत ही पलँग से उठकर, अपने कपड़े सँभाल खड़ी हो जाती है। सुहाग-

रात को पत्नी जिस अज्ञानता का परिचय देती है, उसका मुख्य कारण उसकी काम-विज्ञान से अनभिज्ञता ही है। समाज में पुरुषों ने कुछ ऐसे भाव प्रचलित कर रक्खे हैं, जिसके कारण स्त्रियाँ यह समझने लगी हैं कि काम-विज्ञान का अध्ययन तो पुरुषों को करना चाहिए, स्त्रियों को नहीं। पर इसी अज्ञान के कारण बहुतेरी बहनों का सुहाग मिट्टी में मिल जाता है।

प्रेम की अभिव्यक्ति

सुहाग-रात में पति दांपत्य प्रेम की अभिव्यक्ति (Expression) के लिये अत्यंत इच्छुक होता है। पुरुष की यह प्रकृति है कि वह प्रेम करता है—केवल इसी से संतोष नहीं पाता। वह चाहता है, मैं इस प्रेम को प्रकट करूँ। नारी का स्वभाव ठीक इसके विपरीत है। वह पुरुष को चाहे जितना प्रेम करे, परंतु वह अपने प्रेम को प्रकट नहीं होने देती। पुरुष अपनी पत्नी से यह कहता है—"प्रिये, मैं तुम्हें सबसे अधिक प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारे सिवा किसी अन्य से प्रेम नहीं करता।" जब तक वह यह प्रकट न कर दे, और पत्नी को यह ज्ञात न हो जाय कि वह उससे प्रेम करता है, तब तक उसे आत्मतुष्टि नहीं होती। परंतु स्त्री स्वेच्छा से यह कभी नहीं कहती कि "प्राणेश्वर! मैं आपको प्रेम करती हूँ। आपके सिवा संसार में मैं किसी को प्रेम नहीं करती।" किंतु जब पति आग्रह करता है, तब पत्नी को अपना प्रेम शब्दों द्वारा प्रकट करना पड़ता है। इसका अभिप्राय यह है कि पति पत्नी से यह आशा करता है कि वह उसे जितना प्रेम करती है, उसे वह शब्दों में, प्रेम की मधुर भाषा में, प्रकट करे। इसलिये बहन शांते! तुम प्रेम की अभिव्यक्ति में कदापि भूल न करना।

प्रेमालाप

प्रथम दर्शन होने पर पत्नी को स्नेह-पूर्वक अभिवादन करना चाहिए। आर्य-सभ्यता के अनुसार दोनों करों को जोड़कर, नत-मस्तक हो, नमस्कार करने की प्रथा सर्वोत्तम है। पति-पत्नी को भी मिलन के समय परस्पर 'नमस्ते' करना चाहिए। योरप और अमेरिका की सभ्यता के अनुसार अभिवादन कर-स्पर्श (Shake-hand) द्वारा किया जाता है, और पति-पत्नी तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं में 'चुंबन'

(Kissing) का रिवाज पाया जाता है। किंतु प्रथम दर्शन के समय 'चुंबन' सर्वथा अनुपयुक्त है। पति की यह इच्छा होती है कि पत्नी समीप बैठकर प्रेम-पूर्वक वार्तालाप करे, परंतु लज्जावश वह बातचीत करने में आना-कानी करती है। कभी-कभी तो यह मौनावलंबन इतना अधिक बढ़ जाता है कि पति अधीर हो जाता है, और उसके मन में यह विचार जम जाता है कि पत्नी उसे प्यार नहीं करती। पत्नी को मर्यादा के साथ संभाषण करना चाहिए। जब पत्नी संभाषण में संलग्न हो जाती है, तो पति चुंबन और आलिंगन द्वारा प्रेम प्रकट करता है। इन प्रेमाचारों के प्रति पत्नी को न तो उदासीन वृत्ति ग्रहण करनी चाहिए, और न किसी प्रकार से अरुचि या ग्लानि ही प्रकट करनी चाहिए। और, सत्य तो यह है कि जो पत्नी हृदय से पति को प्रेम करती है, वह कदापि उसके चुंबन या आलिंगन से उदासीन नहीं रह सकती है। यह अनुभव की बात है। यह बिलकुल सच कहा है—

"प्रणय मधुर, चाउल भरे, सरस, सनेह-समेत—
मृगनैनिन के ये बचन हरे चित्त को छेत।"

पति के प्रेमाचरों से घृणा करने का मतलब तो यह है कि पत्नी पति को नहीं चाहती*। यदि सुहाग-रात को पति के मन में यह

---

*नाभिपश्यति भर्तारं नोत्तरं सम्प्रतीच्छति ;
वियोगे सुखमाप्नोति संयोगे चातिसीदति ।
शय्यामुपगता शेते बदनमार्ष्टि चुम्बने ,
तन्मित्रं द्वेष्टि नानम्व विरक्ता नाभिवाञ्छति ।

जो स्त्री अपने पति के सामने नहीं देखती, उससे आँखें नहीं मिलाती, उसके पूछे हुए प्रश्न का जवाब नहीं देती, पति जब गृह में रहता है, तो दुखी रहती है, जब पति गृह से बाहर चला जाता है, तब प्रसन्न होती है। प्रथम तो अपने पति के साथ पलँग पर शयन नहीं करती, और यदि सो भी जाय, तो करवट लेकर सोती है, तथा पति के चुंबन लेने पर कपोलों को कपड़े से साफ़ कर देती है। पति के मित्र से द्वेष रखती है, और पति के हृदय से चाहने पर भी उससे नाराज़ रहती है, उसे 'पतिद्विष्टा' कहते हैं। ये कुलटा स्त्री के लक्षण हैं।

(भर्तृहरि-कृत शृंगार-शतक; अनुवादक, हरिदास वैद्य, मथुरा, पृष्ठ ११८)

संदेह उत्पन्न हो गया कि पत्नी मुझे नहीं चाहती, तो इससे जीवन दुखी बन जायगा। पति प्रेम-दान का प्रतिदान चाहता है, और पत्नी को प्रेम का प्रतिदान देने में कोई भय, शंका या संकोच करने की आवश्यकता ही नहीं है। इस अवसर पर पान-सेवन करने का रिवाज है। इसमें संदेह नहीं कि यह रिवाज बहुत ही समझ-बूझकर चलाया गया है। पान कामोत्तेजक वस्तु है। इसके सेवन से कामोत्तेजन होता है। इसीलिये इस अवसर पर इसका व्यवहार होता है। सुगंधि, इत्र और सुगंधित तैल आदि भी कामोत्तेजक हैं। पुष्प-हार भी इसी उद्देश की पूर्ति करते हैं। यही कारण है कि पति-पत्नी पुष्प-हार धारण करते हैं, और पत्नी अपने केशों को पुष्पों से सज्जित करती है। पुष्प-शय्या का आयोजन भी किया जाता है। मैं यह अनुभव से कहती हूँ कि पति द्वारा प्रेम-पूर्वक दी गई किसी वस्तु को स्वीकार न करना एक प्रकार से पति को अप्रसन्न करना है, और उसके प्रेम-चिह्न (Token of love) को मंजूर न करना यह प्रकट करता है कि पत्नी के हृदय से पति के हृदय का सामंजस्य (Harmony) पूर्णरीत्या नहीं हुआ है। मुझे पान खाने का शौक़ नहीं था, और अब भी मैं पान नहीं खाती, परंतु सुहाग-रात को जब पति ने बड़े प्रेम-पूर्वक मुझे पान दिया, तो मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। इससे उनके हृदय पर अच्छा प्रभाव न पड़ा। मैं तुरंत ही ताड़ गई कि वह मुझसे नाराज हो गए हैं। मैंने अपनी स्थिति उन्हें समझाई, और उनसे अवज्ञा के लिये क्षमा माँगी, तब कहीं मुझे शांति मिली।

विवाह-प्रतिज्ञा की स्मृति

शांता, तुम यह जानती हो कि स्त्री त्याग की मूर्ति है। उसमें बड़े-से-बड़ा बलिदान करने की शक्ति का अक्षय भांडार है; परंतु जब तक उसे यह पूरा विश्वास न हो जाय कि जिसके चरणारविंदों में वह आत्मसमर्पण कर रही है, वह मेरे सिवा और किसी स्त्री के प्रति आकर्षित नहीं है, तब तक वह अपना सर्वस्व अर्पण नहीं कर सकती।

जब पति के श्रीमुख से पत्नी विवाह-समय की की गई प्रतिज्ञाओं को दुहराते सुनती है, तो उसकी श्रद्धा जाग्रत् हो जाती है। उसमें पति के प्रति विश्वास पैदा हो जाता है। जब पति यह कहता है—

"हे प्राणाधिके! मैंने विवाह-संस्कार के समय जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनका मैं आजीवन पालन करूँगा। मैं मनसा, वाचा, कर्मणा एक-पत्नीव्रत का पालन करूँगा। मैं सदैव तुम्हारे सुख दुःख में जीवन-साथी रहूँगा। मैं तुम्हारे सुख में अपना सुख और तुम्हारे दुःख में अपना दुःख समझूँगा। मैं तुम्हें सुखी बनाने के लिये सर्वदा प्रयत्न करूँगा। हम दोनो में परस्पर प्रेम की वृद्धि होती रहे—इस भावना से प्रेरित होकर अपनी प्रत्येक क्रिया करूँगा। तुम मुझ पर पूर्ण विश्वास रक्खो। संसार में तुम्हीं अकेली मेरी जीवन-संगिनी हो, जिसके सामने मैं अपना हृदय खोलकर रख सकता हूँ। हम दोनो 'दो शरीरों में एक आत्मा' बनकर रहें।' तब पत्नी पति के चरणों में आत्मसमर्पण कर देती है। नारी को जैसे जीवन-साथी की चाह है, यदि वैसा उसे मिल गया, तो वह क्यों न अपने को उसे सौंप दे? अब पति-पत्नी के बीच किसी भी प्रकार का परदा करना छल-कपट और विश्वासघात होगा। पति से न हृदय का कोई भेद छिपाया जाय, और न शरीर का ही।

वात्स्यायन का उपदेश

वात्स्यायन ने इस अवसर के लिये जो उपदेश दिया है, वह बहुत ही उत्तम है, जिसका पालन प्रत्येक प्रेमी पति को करना चाहिए, और प्रत्येक पत्नी को इस कार्य में पति की सहायता करनी चाहिए। वात्स्यायन कहते हैं—"असमय में ही ब्रह्मचर्य का खंडन न करना चाहिए। पत्नी को काम-विज्ञान एवं चौंसठ कलाओं की शिक्षा देनी चाहिए। उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करना चाहिए। अपने मनोरथों को प्रकट करना चाहिए। भावी जीवन के संबंध में अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। सपत्नी का भय पत्नी के मन से दूर कर देना चाहिए, और जब उसका कन्या-भाव (अर्थात् लज्जा, संकोच और भय) दूर हो जाय, तब नायिका उद्विग्न न हो, इस प्रकार उपक्रम करना चाहिए।"

वात्स्यायन का उपदेश मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वोत्तम है। प्रथम मिलन और प्रथम रात्रि में पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना चाहिए। जब तक उनके आत्मा और हृदय में पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित न हो जाय, तब तक शारीरिक संयोग वांछनीय नहीं।

प्यारी शांता, तुम अपनी सुहाग-रात को सुखी और आनंद-पूर्ण बनाने की चेष्टा करना। अपनी ओर से कोई ऐसी असावधानी, भूल या कार्य न करना, जिससे दांपत्य संबंध में अंतर पड़ जाय। अब मैं इस पत्र को यहीं समाप्त करती हूँ। गृह-संबंधी कार्यों की देख-भाल करनी है, तथा अब विमल और कमला स्कूल से आते होंगे। उनके साथ भी कुछ विनोद करना पड़ेगा।

तुम्हारी
शुभाकांक्षिणी
इंदिरा

विवाह का आनंद

शांति-निवास, आगरा
२६ मार्च, १९३१

प्रिय बहन शांता,

तुमने मेरा पिछला पत्र ध्यान-पूर्वक पढ़ा है, और उसे पढ़कर तुम्हारे मन में अनेक नवीन भाव और जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। तुमने अपने पत्र में लिखा है—"बहनजी, तुम मेरी उत्सुकता और कुतूहल को गुदगुदाकर मेरे हृदय में न-जाने क्या-क्या भाव पैदा कर रही हो। आज तक मैं जिन प्रश्नों को पूछने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी, उन्हें आज मैं तुमसे पूछने का साहस कर रही हूँ। तुमने लिखा है, जब नववधू अपने पति के 'शयन-गृह' में जाती है तो उसके मन में विविध प्रकार के विचार-भाव पैदा होते हैं, और अस्पष्ट रूप से वह यह अनुभव-सा करती है कि पति के साथ उसे जो आचरण करना है, उसका संबंध 'काम' (Sex) से है। यह 'काम' क्या चीज़ है, मैंने इसे नहीं समझा। 'काम' और विवाह का क्या संबंध है ? मैं चाहती हूँ कि तुम अपने अगले पत्र में विवाह के इस पहलू पर लिखो, जिससे मैं इसका रहस्य समझ सकूँ।"

शांता, तुमने जो जिज्ञासा प्रकट की है, वह बहुत स्वाभाविक है। जो नववधू 'काम' का रहस्य नहीं समझती, वह 'दांपत्य आनंद' का सुख भी नहीं भोग सकती। इसलिये मैं इस विषय पर विस्तार-पूर्वक समझाऊँगी।

काम का रहस्य (Secret of Sex)

शरीर की वृद्धि और विकास में 'ग्रंथियों' (Glands) का स्राव अतीव आवश्यक है। इन ग्रंथियों का स्राव (Secretion) शरीर के रक्त के साथ मिलकर शरीर में वह कांति और दीप्ति उत्पन्न करता है, जो नारीत्व और पुरुषत्व के सूचक होते हैं। युवावस्था में युवक और

युवती के शरीर में जो आश्चर्य-जनक विकास दिखाई पड़ता है, उसका एकमात्र कारण इन ग्रंथियों का स्राव ही है। कूपर-ग्रंथियाँ (Cooper glands) शिश्न के मूल के समीप दोनों ओर होती हैं। जब काम-भाव अति प्रबल रूप में होता है, तब शिश्न-नलिका द्वारा इन ग्रंथियों से स्राव होने लगता—एक प्रकार का श्वेत द्रव प्रवाहित होता है। यह स्राव बिलकुल स्वाभाविक है। परंतु कुछ अज्ञानी लोग इसे वीर्य (Semen) समझकर इसे एक प्रकार का रोग समझते हैं। यह द्रव बहुत सफ़ेद अंडे की सफ़ेदी से मिलता-जुलता होता है। इसी प्रकार पुरुष के शरीर में प्रोस्टेट ग्रंथियों का भी काम-वासना से घनिष्ठ संबंध है। जब कामोत्तेजना होती है, तब वीर्यपात के समय वीर्य के साथ इस ग्रंथि का रस बाहर निकलता है। शुक्रकोश (Seminal vesicles) से स्राव लगातार होता रहता है। इसका काम-वासना से सीधा संपर्क नहीं। हाँ, जब संभोग के समय वीर्य शिश्न-नलिका द्वारा त्याग दिया जाता है, तब यह भी बाहर निकल जाता है। संभोग के समय जो वीर्य शिश्न द्वारा योनि में गिरता है, उसमें तीन ग्रंथियों का रस होता है—अंडकोश की ग्रंथियों का स्राव, शुक्रकोश की ग्रंथियों का स्राव और प्रोस्टेट ग्रंथियों का स्राव। इन तीनों ग्रंथियों के यथावत् कार्य करने पर पुरुष में पुरुषत्व (Manhood) की ज्योति जगमगाती है—शरीर में शक्ति, ओज, स्फूर्ति और वीर्य का उत्पादन होता है। इन ग्रंथियों के अंतःस्राव (Internal section) अर्थात् शरीर में रस के मिल जाने से पुरुष तेजस्वी, हृष्ट-पुष्ट और बलवान् होता है। उसमें पुरुषत्व-सूचक समस्त गुणों का विकास होता है। जिन पुरुषों की उपर्युक्त ग्रंथियाँ समुचित रीति से कार्य नहीं करतीं या इनमें से किसी का अभाव होता है, उनमें वीर्य कम या बिलकुल पैदा नहीं होता, उनमें काम-भाव का अभाव रहता है।

ठीक इसी प्रकार स्त्रियों के शरीर में भी काम-संबंधी ग्रंथियाँ (Sex-glands) होती हैं। इनमें डिंब-ग्रंथियाँ (Ovaries) सबसे महत्त्व-पूर्ण हैं। इन दोनो डिंब-ग्रंथियों में (जो गर्भाशय के दोनो ओर दोनो सिरों पर होती हैं) क्रम से प्रतिमास एक डिंब या अंड (Ovum) बनकर तैयार होता है। यह डिंब प्रतिमास रजोदर्शन के पश्चात् तैयार होकर योनि-मार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है। यह

बहिःस्राव है। परंतु डिंब-ग्रंथियों से अंतःस्राव भी होता है। डिंब-ग्रंथियों से एक प्रकार का रस तैयार होता है, जो शरीर के रक्त में मिलकर अंग-प्रत्यंग में कांति उत्पन्न करता है, और स्त्री को नारीत्व के समग्र गुणों से विभूषित करता है। यह स्राव बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से प्रारंभ होता है। स्त्रीत्व का विकास इसी पर निर्भर है। स्त्री के गर्भाशय से प्रति अट्ठाईसवें दिन प्रतिमास रक्त प्रवाहित होता है। इसे रजोदर्शन कहते हैं। प्रकृति ने कुछ ऐसा विधान कर दिया है, जिससे अनावश्यक रक्त आदि प्रतिमास योनि-द्वार द्वारा बाहर निकल जाता है। प्रसिद्ध काम-विज्ञान-वेत्ता (Winfield Scott Hall) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ काम-विज्ञान (Sex knowledge) में लिखा है—"योरप की अनेक रसायन-शालाओं में जो अन्वेषण किए गए हैं, उनसे यह प्रमाणित हो चुका है कि पुरुष के अंड और स्त्री की डिंब-ग्रंथियाँ (Ovaries) एक ऐसा द्रव उत्पन्न करती हैं, जो रक्त के साथ घुलकर शरीर के प्रत्येक भाग में प्रवाहित हो जाता है, और यह युवक-युवती के शरीर के विकास में आश्चर्य-जनक जादू का-सा प्रभाव डालता है।"

स्त्री के शरीर में जो सौंदर्य, रूप-लावण्य, सुकुमारता आदि गुण दिखाई पड़ते हैं, उनकी उत्पादक ये डिंब-ग्रंथियाँ ही हैं। इसी कारण उन्हें मासिक धर्म भी ठीक समय पर होता है। रजोदर्शन के बाद स्त्रियाँ अपने शरीर में एक विशेष प्रकार की स्फूर्ति, उमंग, उत्तेजना, मादकता और अंग-प्रत्यंगों में फड़कन अनुभव करती हैं। यही काम-वासना है।

पुरुष के शुक्रकोश (Seminal vesicles) से दो प्रकार की स्नायु-प्रणालियाँ (Nervous System) मिलती हैं। एक स्नायु-प्रणाली मेरुदंड की ओर जाती है, जिसके द्वारा मस्तिष्क को जननेंद्रिय की दशा का ज्ञान होता है, और दूसरी स्नायु-प्रणाली अन्य प्रकार की प्रवृत्तियों की सूचना देती है।

अतः जब शुक्रकोश पर आंतरिक या बाह्य दबाव पड़ता है, तो स्नायु-मंडल में उत्तेजना पैदा हो जाती है। स्नायु-मंडल (Nervous System) में एक प्रकार का तनाव-सा अनुभव होता है। यह स्नायु मेरुदंड में स्थित है। शुक्रकोशों में दबाव या तो उनके अत्यधिक शुक्र से भर जाने के कारण होता है, अथवा शुक्रकोश पर मूत्राशय या

मत्राशय के भरा रहने के कारण दबाव से उत्तेजना पैदा हो जाती है। जब पुरुष रात में पीठ के बल चित सो रहा हो, तब इस प्रकार की उत्तेजना का अनुभव स्वाभाविक बात है। काम के इस विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुष में काम-भाव (Sex-feeling) शरीर-विज्ञान के अनुसार स्वाभाविक है। यदि स्त्री या पुरुष पृथक्-पृथक् हों, और उनके समक्ष कोई कामोद्दीपक वस्तु भी न हो, फिर भी यह संभव है कि वह काम-वासना का अनुभव करे। साधारण रूप से लोगों में यह विचार पाया जाता है कि काम-भाव का उदय सुंदर रूप-दर्शन, सुगंधि, मधुर गायन, नृत्य, स्पर्श, चित्र-दर्शन या कामोत्तेजक साहित्य पढ़ने से होता है। परंतु यह सर्वांश में सत्य नहीं। ये वस्तुएँ कामोत्तेजक या कामोद्दीपक हैं, और जब शरीर में काम-भाव जाग्रत् हो जाय, तो इनसे उसे उत्तेजना मिल सकती है। यदि किसी शक्ति-हीन स्त्री या पुरुष के सामने कोई कामोत्तेजक वस्तु रख दी जाय, तो यह संभव नहीं कि उसमें काम-भाव उदय हो जाय। किसी नपुंसक पुरुष के सामने चाहे जितनी सुंदर स्त्री उपस्थित हो, परंतु वह उसमें काम-भाव जाग्रत् नहीं कर सकती। इसी प्रकार एक स्त्रीत्व-हीन स्त्री के सामने चाहे जितना वीर्यवान्, बलिष्ठ और सुंदर पुरुष विद्यमान हो, उसमें काम-भाव जागरित नहीं कर सकता।

दांपत्य जीवन में काम का महत्त्व

शोता, कुछ स्त्री-पुरुष इस भ्रम-पूर्ण विचार के शिकार हैं कि काम-भाव की पूर्ति, संयोग या मैथुन एक घृणित कार्य है। यह कार्य अत्यंत ही बुरा और अधार्मिक है। परंतु यह केवल दूषित मस्तिष्क का दुर्बल विचार है। विवाह एक धार्मिक कृत्य है, और विवाहोपरांत धर्म-शास्त्र पति-पत्नी को विधिवत् काम-सेवन की आज्ञा देता है, तब इस कार्य में अधार्मिकता कैसी? जो कार्य इस जगत् में प्राणी-सृष्टि का कारण है, वह घृणित और बुरा कैसे हो सकता है। विश्व-नियंता ने संतानोत्पत्ति के कार्य को इतना आकर्षक और सुंदर बनाकर वास्तव में मानव के इस गुरुतर दायित्व को एक मनोरंजन-मात्र बना दिया है। शरीर की अन्य आवश्यकताओं के समान संभोग भी एक आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति विवाहित जीवन में आवश्यक है। जो

दंपति अपने विवाहित जीवन में समुचित रीति से काम-सेवन नहीं करते, अथवा जो अतिशय मात्रा में काम-सेवन करते हैं, वे दोनो ही ग़लत मार्ग पर हैं, जिसका फल उन्हें अपने जीवन में भोगना पड़ता है। विवाह पशु वृत्ति (Animal Passion) को चरितार्थ करने का साधन नहीं। पुरुष जब चाहे, तब स्त्री के शरीर का भोग करे और स्त्री हर समय, चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, अपने शरीर को पति के भोग के लिये सौंप दे—यह पातिव्रत नहीं। अज्ञ स्त्रियाँ ऐसा ही समझती हैं। परंतु यह उनकी भूल है। उपर्युक्त दुर्विचार का प्रचार इतना अधिक हुआ है, और उससे स्त्री-जाति इतनी प्रभावित हुई है कि स्त्री को पुरुष की इच्छा की पूर्ति का साधन-मात्र समझा जाता है। यह कार्य 'संभोग' नहीं कहा जा सकता; यह तो बलात्कार है। पति या पत्नी यदि परस्पर एक दूसरे की इच्छा के विरुद्ध संभोग करते हैं, तो वह बलात्कार (Rape) ही है। उससे उसका आत्मिक एवं नैतिक पतन ही नहीं होता, प्रत्युत स्वास्थ्य की भी हानि होती है। इस प्रकार के बलात्कार से विवाहित जीवन दुखी बन जाता है, और पति-पत्नी में झगड़े पैदा हो जाते हैं। पति-पत्नी के इस अनियमित और स्वेच्छाचारी जीवन का प्रभाव भावी संतान पर भी बुरा पड़ता है। अल्फ्रेड पहलर ने कहा है—"यह एक ज्वलंत सत्य है कि अपराधी, दुराचारी, दुर्बलेंद्रिय एवं लैंगिक दृष्टि से हीन बालक बहुधा ऐसे कुलों में जन्म लेते हैं, जिनमें पति-पत्नी-संबंध आनंद-रहित होते हैं।"

दांपत्य प्रेम

प्यारी शांता, तुम यह बात सदैव याद रखना कि पवित्र दांपत्य प्रेम गृहस्थ-जीवन का आधार है। जब दंपति—पति या पत्नी—परस्पर शुद्ध भाव से प्रेम करते हैं, तभी वह वास्तव में एक दूसरे के विचारों और मनोभावों का आदर कर सकते हैं। जिस पति या पत्नी में पवित्र प्रेम का अभाव होता है, और केवल पशु-भाव की ही प्रबलता होती है, वह एक दूसरे के मनोभावों का आदर नहीं कर सकते। दांपत्य प्रेम के अभाव में जीवन नीरस और दुःखांत बन जाता है। दांपत्य प्रेम के अभाव में पति-पत्नी-कलह, गृह-कलह, संबंध-विच्छेद, तलाक़, गुप्त व्यभिचार, वेश्या-वृत्ति, नारी-अपहरण, और अप्राकृतिक संबंध पैदा हो जाते हैं। पवित्र प्रेम पति को पत्नीव्रती और स्त्री को पतिव्रता

काम भाव को जागरित करने में पति का प्रेमाचरण जादू का-सा असर करता है। जिस प्रकार एक संगीताचार्य अपने सहज ज्ञान द्वारा आसानी से यह जान लेता है कि सितार के किस तार पर अपनी उँगली का स्पर्श करने से वह एक मधुर ध्वनि की सृष्टि कर सकता है, वैसे ही काम-कलाविद् पति भी बड़ी आसानी से यह जान लेता है कि पत्नी के शरीर-यंत्र के किस-किस तार के स्पर्श से मधुर संगीत पैदा होता है। यदि पति चतुर हो, तो स्त्री की लज्जाशील प्रकृति अधिक बाधा नहीं डाल सकती। स्त्री एक कोमल वाद्य-यंत्र है, इसलिये उसके प्रयोगकर्ता को भी यह उचित है कि वह उसकी कोमलता का ध्यान रखते हुए उसका प्रयोग करे।

शांता, पति की प्रेम-पूर्ण, मधुर वचनावली से हृदय में जो अपूर्व उल्लास पैदा होता है, वह किसी प्रकार शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। उनके कोमल स्पर्श, चुंबन और आलिंगन से पत्नी के समस्त शरीर में एक प्रकार की बिजली-सी दौड़ जाती है। शरीर के अंगों में एक अद्भुत जोश पैदा हो जाता है, और अंत में पति-पत्नी में कामेच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि दोनो के शरीर चुंबक की भाँति एक दूसरे की ओर आकृष्ट होकर मिल जाना चाहते हैं। इस समय कुल-बालाओं का आचरण मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। वारांगनाएँ—वेश्याएँ अपनी सारी लज्जा को त्यागकर जैसा कुत्सित आचरण करती हैं, वैसा कुलवधुओं में देखने को नहीं मिलता। प्रथम सहवास के समय कुलवधू से ऐसे आचरण की आशा भी मूर्खता होगी। यह ठीक है कि पत्नी में, मर्यादा के भीतर, रसिकता, हाव-भाव आदि होने चाहिए। परंतु नववधू में यह हाव-भाव कैसे हो सकते हैं?

भर्तृहरि ने अपने 'शृंगार-शतक' में नारी की काम-प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार किया है—"जब पति सहवास की इच्छा, अपनी चेष्टा द्वारा, शब्दों द्वारा नहीं, प्रकट करते हैं, तब कुल-वधू पहले तो न-न कहती है, और थोड़ी देर बाद संभोग की इच्छा प्रकट करती है। इसके बाद वह लजाती हुई अंगों को ढीला कर देती और फिर अधीर हो प्रेम के रस में डूब जाती है। फिर एकांत रति की इच्छा करती है, और संभोग में विविध प्रकार की चातुरी दिखलाती हुई निःशंक होकर चुंबन-आलिंगन से अपूर्व आनंद देती है।"

मनाता है। आधुनिक समय में वैवाहिक अपराधों (Marit[al]
offences) और काम्य अशांति (Sexual unrest) का प्रमुख
और मौलिक कारण है पति-पत्नी में काम-संबंध का असामंजस्य
(Mal adjustment of sexual relation)। जिस पति-पत्नी का
जीवन काम की दृष्टि से पूर्णतया संतुष्ट और परस्पर सुखी है,
वे अपने जीवन में एक-पत्नीव्रत या एक-पतिव्रत को भंग करने की स्वप्न
में भी कल्पना नहीं कर सकते।

प्रथम सहवास—एक नूतन अनुभव

प्रिय बहन, विवाहित जीवन में प्रथम सहवास एक नवीन अनुभव
है, जिसका पति या पत्नी को पहले से क्रियात्मक ज्ञान नहीं होता।
पत्नी—भारतीय पत्नी काम-विज्ञान के रहस्यों से सर्वथा अनभिज्ञ
होती है। और, ऐसी दशा में यदि पति भी काम-विज्ञान से कोरे
निकले, तो वास्तव में, सुहाग-रात (विवाह के आनंद) को दुःखांत
में परिणत कर देंगे। काम-कला-निपुण पति अपने प्रेम-व्यवहार से
स्थिति को सँभाल लेते और सुहाग-रात को सुखांत बना देते हैं।

परंतु जब तक पत्नी पति के कार्य में सहयोग न दे, तब तक पूर्ण
आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती। नारी स्वभाव से लज्जाशील और
संकोचशील है। सदियों के संस्कारों ने उसे लज्जाशील बना दिया है।
वह चाहे अन्य अवसरों पर अपनी लज्जा को त्याग भले ही दे, पर
इस अवसर पर उसमें लज्जा का आधिक्य हो जाता है। वह इस
लज्जा के कारण अपने मनोभाव और कामनाएँ एक ऐसे 'अपरिचित'
के सम्मुख सहसा व्यक्त करने में असमर्थ रहती है, जिसे उसने न
पहले कभी देखा, न समझा, न पढ़ा। यह बड़ी विचित्र बात है कि
यह लज्जा, जो इस समय पति को बड़ी अवांछनीय और बुरी प्रतीत
होती है, उसके सतीत्व के लिये कवच का काम करती है। इस स्त्री-
सुलभ लज्जा के कारण ही विवाहित जीवन में उसकी प्रेम-सरिता का
प्रवाह स्थिर और शांत रहता है। यह एक ज्वलंत सत्य है कि पुरुष
का नारी ... सहसा जागरित हो जाता है, मानो वह
इसके ... तत्पर हो; परंतु पुरुष के प्रति नारी का काम-
... है, और सत्य तो यह है कि पत्नी के
... न हो।

काम-भाव को जागरित करने में पति का प्रेमाचरण जादू का-सा असर करता है। जिस प्रकार एक संगीताचार्य अपने सहज ज्ञान द्वारा आसानी से यह जान लेता है कि सितार के किस तार पर अपनी उँगली का स्पर्श करने से वह एक मधुर ध्वनि की सृष्टि कर सकता है, वैसे ही काम-कलाविद् पति भी बड़ी आसानी से यह जान लेता है कि पत्नी के शरीर-यंत्र के किस-किस तार के स्पर्श से मधुर संगीत पैदा होता है। यदि पति चतुर हो, तो स्त्री की लज्जाशील प्रकृति अधिक बाधा नहीं डाल सकती। स्त्री एक कोमल वाद्य-यंत्र है, इसलिये उसके प्रयोगकर्ता को भी यह उचित है कि वह उसकी कोमलता का ध्यान रखते हुए उसका प्रयोग करे।

शांता, पति की प्रेम-पूर्ण, मधुर वचनावली से हृदय में जो अपूर्व उल्लास पैदा होता है, वह किसी प्रकार शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। उनके कोमल स्पर्श, चुंबन और आलिंगन से पत्नी के समस्त शरीर में एक प्रकार की बिजली-सी दौड़ जाती है। शरीर के अंगों में एक अद्भुत जोश पैदा हो जाता है, और अंत में पति-पत्नी में कामेच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि दोनो के शरीर चुंबक की भाँति एक दूसरे की ओर आकृष्ट होकर मिल जाना चाहते हैं। इस समय कुल-बालाओं का आचरण मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। वारांगनाएँ—वेश्याएँ अपनी सारी लज्जा को त्यागकर जैसा कुत्सित आचरण करती हैं, वैसा कुलवधुओं में देखने को नहीं मिलता। प्रथम सहवास के समय कुलवधू से ऐसे आचरण की आशा भी मूर्खता होगी। यह ठीक है कि पत्नी में, मर्यादा के भीतर, रसिकता, हाव-भाव आदि होने चाहिए। परंतु नववधू में यह हाव-भाव कैसे हो सकते हैं?

भर्तृहरि ने अपने 'शृंगार-शतक' में नारी की काम-प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार किया है—"जब पति सहवास की इच्छा, अपनी चेष्टा द्वारा, शब्दों द्वारा नहीं, प्रकट करते हैं, तब कुल-वधू पहले तो न-न कहती है, और थोड़ी देर बाद संभोग की इच्छा प्रकट करती है। इसके बाद वह लजाती हुई अंगों को ढीला कर देती और फिर अधीर हो प्रेम के रस में डूब जाती है। फिर एकांत रति की इच्छा करती है, और संभोग में विविध प्रकार की चातुरी दिखलाती हुई निःशंक होकर चुंबन-आलिंगन से अपूर्व आनंद देती है।"

कुमारीत्व-भंग

स्त्री की बाह्य जननेंद्रिय की रचना से यह प्रकट होता है कि कुमारिका की योनि एक पतले चर्म के परदे (Hymen) से आवृत रहती है। प्रकृति ने यह व्यवस्था इसलिये कर दी है कि कुमारावस्था वह कुमारियों की जननेंद्रिय की स्वतः रक्षा हो। यदि वे उस ओर ध्यान देंगी, तो उनके विचार कामुक बन जायँगे, और वे पतन की ओर चली जायँगी। इसलिये ऐसी रचना की गई है। योनि के परदे में एक छोटा-सा छिद्र होता है, जिससे मासिक धर्म के समय रज बाहर निकलता है। जब प्रथम बार पति कुमारी से समागम करते हैं, तो यह स्वाभाविक है कि यह कोमल त्वचा शिश्न के संघर्ष से फट जाय। इसके फटने में वेदना होती है, और कुछ थोड़ा रक्त भी निकलता है। यह स्वाभाविक है। इसलिये इसके लिये स्त्री को चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। यदि स्त्री अपनी दोनो जंघाओं को मिलाकर चित लेटी रहे, तो थोड़ी देर में रक्त स्वयं बंद हो जाता है, और वेदना भी बंद हो जाती है। अनेक पत्नियों और पतियों को जननेंद्रियों की रचना से अनभिज्ञता के कारण इस तथ्य का ज्ञान नहीं होता। इसलिये वे यह समझने लगते हैं कि यह रक्त या तो योनि से प्रवाहित हुआ है या शिश्न से, और बस, वे भयभीत हो जाते हैं। यह सत्य है कि प्रथम चार-पाँच सहवासों (Copulations) में स्त्री को आनंद नहीं मिलता, और इसी कारण पुरुष भी आनंदानुभव से वंचित रहता है। इसका कारण यह है कि योनि-मार्ग अत्यधिक संकुचित होता है, और जब तक दो-चार बार मैथुन से वह शिश्न को पूरी तरह ग्रहण करने योग्य न बन जाय, तब तक स्त्री को वेदना ही होती है।

सहवास में पत्नी को आनंद प्राप्त होता है

यह बिलकुल ग़लत धारणा है कि सहवास तो पति के आनंद के लिये है, और पत्नी को सहवास में कोई आनंद नहीं आता; पति के आनंद से ही पत्नी को सुख मिलता है।

यह ग़लत धारणा ही स्त्रियों के साथ होनेवाले दांपत्य अत्याचार का मूल-कारण है। पुरुष यह समझते हैं कि स्त्रियाँ तो संभोग के लिये हर समय तत्पर रहती हैं, और उनकी जननेंद्रिय की रचना भी ऐसी

ढंग से की गई है, जिससे उन्हें, पुरुष-जननेंद्रिय की भाँति, किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रसारण (Erection) की जरूरत नहीं। परंतु यह वास्तव में बड़ी भूल है। स्त्री हर समय संभोग के लिये तैयार नहीं होती। उसमें कामेच्छा जागरित हो गई हो, तभी उसे पति के प्रेमाचार की जरूरत होती है। इसलिये चतुर पति का यह कर्तव्य है कि वह संभोग आरंभ करने से पूर्व पत्नी से स्वीकृति ले ले।

प्यारी शांता, तुम इस नियम का पालन अवश्य करना। जब तुम मासिक धर्म से हो तब कभी भूलकर भी पति-सहवास या संभोग न करना, इससे स्त्री और पुरुष दोनों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। मासिक धर्म के समय योनि से जो रक्त बहता है, वह अति दूषित होता है; उससे इंद्रिय के स्पर्श होने से अनेक रोग हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि इन दिनों योनि में कोमलता अधिक आ जाती और उत्तेजना भी काफी हो जाती है, इसलिये इस समय समागम करने से योनि के विकृत हो जाने का भय है।

संभोग में स्त्री को पुरुष के समान ही आनंद प्राप्त होता है। जिस समय मैथुन की समाप्ति पर, वीर्यपात के समय, पुरुष को कुछ क्षणों के लिये अनिर्वचनीय आनंद मिलता है, वैसा ही आनंद स्त्री को भी प्राप्त होता है। यदि पुरुष और स्त्री को यह आनंद एक ही समय प्राप्त हो, तो दोनो की पूर्ण तुष्टि हो जाती है। यदि पुरुष का वीर्यपात हो जाय, और उस समय स्त्री को आनद (Climax) की अनुभूति न हो, या उसकी अनुभूति में कुछ क्षणों या मिनटों की देर हो, तो स्त्री को संतुष्टि नहीं होती—उसे सभाग से सुख नहीं मिलता। कारण, उसकी काम-चेष्टा जागरित तो हो जाती है, परंतु पूरी नहीं हो पाती। श्रीमती डॉक्टर मेरी स्टोप्स ने अपनी सुविख्यात पुस्तक 'विवाहित प्रेम' (Married Love) में यह बतलाया है कि 'स्त्री-पुरुष का आनंदानुभव' एक साथ, एक ही क्षण में, होना पूर्ण संतुष्टि के लिये आवश्यक है। परंतु "बहुधा पुरुष का आनंदानुभव (Climax) अपनी चरम सीमा पर शीघ्र पहुँच जाता है, और उस समय तक स्त्री की काम-चेष्टा पूर्ण रूप से जागरित भी नहीं हो पाती।" यह स्थिति बहुत शोचनीय है। वास्तव में उत्तम संभोग का लक्षण तो यह है कि संभोग की समाप्ति पर पति-पत्नी दोनो को पूरी संतुष्टि हो जाय।

संभोग में स्त्री की पूर्ण संतुष्टि उसकी मनोदशा और शारीरिक चेष्टाओं से सहज ही जानी जा सकती है।

एक रहस्य

जब पुरुष में मैथुन की इच्छा पैदा होती है, तब प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate glands) तथा अन्य ग्रंथियों से एक प्रकार का पतला, चिकना और कुछ श्वेत रस (Fluid) निकलता है, और इससे शिश्न-मुंड (Glans) तर हो जाता है। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था इसलिये की है कि इससे शिश्न आसानी के साथ, बिना कष्ट के योनि में प्रवेश कर सके। पुरुष की भाँति स्त्री की योनि के समी भी ग्रंथियाँ होती हैं। जब स्त्री संभोग की इच्छा करती और मैथुन के लिये पूरी तरह तैयार हो जाती है, तब उसकी योनि से चिकना, पतला और सफेद द्रव निकलता है, जिससे योनि की दीवारें भी तर हो जाती हैं। योनि पहले से अधिक कोमल हो जाती है, और योनि की दीवारें भी विस्तृत हो जाती हैं। इस द्रव का निकलना स्वाभाविक है, और यह इस बात का लक्षण है कि वे संभोग के लिये तैयार हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि संभोग से पूर्व योनि से श्वेत द्रव बहना रोग का लक्षण है, परंतु यह उनकी भूल है। अतः स्त्री की योनि से जब तक यह द्रव प्रवाहित होकर भग को तर न कर दे, तब तक कदापि मैथुन में प्रवृत्त न होना चाहिए।

संभोग का अंत

पति के शिश्न द्वारा वीर्यपात के साथ संभोग समाप्त हो जाता है। वीर्य क्या है? वीर्य एक प्रकार का चिकना कपूर-जैसा सफेद और गाढ़ा द्रव होता है, जो पुरुष में ओज और कांति का कारण है। वीर्य-हीन पुरुष संसार में कोई काम नहीं कर सकता। इस वीर्य में, जो योनि में गिरता है, दो करोड़ से पाँच करोड़ तक शुक्र-कीट (Sperms) होते हैं। स्वस्थ पति के वीर्य का प्रत्येक शुक्र-कीट स्त्री के एक डिंब (Egg-cell) से मिलकर गर्भ-धारण की शक्ति रखता है। डॉ० मेरी स्टोप्स ने अपनी 'विवाहित-प्रेम'-नामक पुस्तक में लिखा है—"स्खलित वीर्य का रासायनिक विश्लेषण, यह बतलाता है कि उसमें अन्य द्रवों के सिवा कैलसियम (Calcium) और फ़ासफ़ोरिक

एसिड (Phosphoric acid) अधिक मात्रा में होते हैं, जो हमारे शरीर के लिये बहुमूल्य तत्त्व हैं *।" ये बहुमूल्य द्रव पति-पत्नी की जननेंद्रियों में शोषित हो जाते हैं। कभी-कभी गर्भाशय इस वीर्य के अधिक भाग को शोषित कर लेता है, और कभी वीर्य योनि में ही रहता है। योनि में या तो यह उसकी दीवारों में शोषित हो जाता है, अथवा उसके बाहर निकल जाता है। स्त्री को शिथिल होकर योनि को सिकोड़कर शांति से पड़े रहना चाहिए। इस प्रकार वीर्य के शोषण से स्त्री के शरीर के अंगों को पुष्टि मिलती है। वीर्य व्यर्थ नहीं जाता। यह पुरुष का बहुमूल्य तत्त्व है। स्त्री को चाहिए कि वह इस वीर्य को किसी वस्त्र से साफ न करे, और न उसे जल से धोए ही †।

संतोषप्रद संभोग के बाद स्त्री और पति को नींद आ जाना स्वाभाविक है। संभोग से असंतुष्ट स्त्री को नींद नहीं आती, और सारी रात करवटें बदलते जाती है। स्वार्थी पति कामेच्छा को पूरी कर बड़े आनंद से शयन करता है। यह स्थिति वास्तव में शोचनीय है।

शांता, यह पत्र बहुत लंबा हो गया है। इस पत्र में मैंने अनेक ऐसी बातें बतलाई हैं, जिनका नववधू को बिलकुल ज्ञान नहीं होता, और फलतः उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पत्र को समाप्त कर देने से पूर्व मैं एक बात और बतला देना चाहती हूँ। पति और पत्नी को यह उचित है कि वे काम-संबंधी अपने मनोभावों को स्पष्ट रूप से एक दूसरे को बतला दें। इसके लिये प्रत्येक को एक

* Vide Married Love p. 55.

† "वीर्य स्त्री के समस्त शरीर के लिये सबसे अधिक पौष्टिक वस्तु है। योनि की दीवारों में लगा हुआ वीर्य शोषित होकर स्त्री के अंग-प्रत्यंगों को शक्ति देता है। यही कारण है कि अनेक स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् अधिक मांसल और स्वस्थ हो जाती हैं। वास्तव में वीर्य के बराबर स्त्रियों को शक्ति देनेवाला और कोई इतना पौष्टिक द्रव नहीं है। अनेक शक्ति-हीन (Nervous) और यहाँ तक कि हिस्टीरिया से ग्रस्त स्त्रियों का स्वास्थ्य संतोषप्रद संभोग और वीर्य-शोषण के अविलंब प्रभाव से अच्छा हो गया है।" Ideal Marriage—By Prof. H. S. Gambus (Messrs Brij Mohan & Co., Amritsar) 1936, P. 142 143.

दूसरे की इच्छा, मनोकामना और विचारों को जानने की चेष्टा करनी चाहिए।

अंत में मेरी यह कामना है कि तुम मेरे इन अनुभवों से पूरा लाभ उठाकर अपने विवाहित प्रेम की सदा वृद्धि करो। यही विवाह का आनंद है।

तुम्हारी
प्रिय सहेली
इंदिरा

६

सौंदर्य

शांति-निवास, आगरा
५ एप्रिल, १९३७

मेरी प्यारी बहन !

आज की डाक से तुम्हारा अपनी 'ससुराल' से भेजा हुआ पत्र मिला। पत्र में तुमने अपने पति की बड़ी प्रशंसा की है। तुम उनके स्वभाव, चरित्र, शील, सौंदर्य और मधुर व्यवहार से प्रभावित हुई प्रतीत होती हो। तुमने अपनी सुखमयी सुहाग-रात की कथा बड़े मनोरंजक ढंग से लिखी है, उसे पढ़कर मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम दांपत्य कला में अति निपुण हो। तुम यह चाहती हो कि तुम्हारा दांपत्य जीवन सुधाकर की सोलहों कला युक्त प्रकाशमान हो। दांपत्य प्रेम में बराबर वृद्धि होती रहे। तमने लिखा है—"मुझे दांपत्य जीवन सुखी बनाने की कला सिखला दो, जिससे मैं भी तुम्हारी भाँति आनंद में जीवन बिता सकूँ। क्यों बहन, यह रहस्य मुझे बतलाओगी न ?"

आज मैं इस पत्र में दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के संबंध में एक बात बतलाऊँगी, और वह है सौंदर्य। संसार में सौंदर्य की अनुपम महिमा है। विश्व का प्रत्येक प्राणी ही क्यों, प्रकृति का प्रत्येक कण सौंदर्य के लिये लालायित है। सौंदर्य ने, विश्व में, प्राणी-जगत् पर अद्भुत प्रभाव डाला है। संसार के कवियों ने एक स्वर से सौंदर्य के गीत गाए हैं। प्रकृति के सौंदर्य के वर्णन में कवियों ने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। और, प्रकृति-सौंदर्य के बाद विश्व के मानव-जगत् को जिस सौंदर्य ने सबसे अधिक प्रभावित किया है, वह है नारी-सौंदर्य। नारी-सौंदर्य को सजीव, साकार प्रतिमा है। हिंदी के 'रीति काल' के कवियों (देव, बिहारी, पद्माकर आदि) ने तो उसके अंग प्रत्यंग को उघाड़ उघाड़कर उसके नग्न सौंदर्य का प्रदर्शन किया है।

सौंदर्य-भावना सब युगों, सब देशों और सब जातियों में विद्यमान होने पर भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सुंदरता वास्तव में क्या है। विचारकों और दार्शनिकों (Philosophers) ने सौंदर्य की परिभाषा कला (Art) के संबंध में करने का प्रयत्न किया है, परंतु निश्चय-पूर्वक वे कोई एक परिभाषा नहीं बना सके। नारी-सौंदर्य के विषय में भी यही बात है। विश्व के समस्त देशों में नारी की सुंदरता का कोई एक माप-दंड (Standard) नहीं है। इसका कारण यही है कि सौंदर्य प्रत्येक देश के जातीय या सामाजिक आदर्शों के अनुसार माना गया है, और एक देश तथा एक जाति (Race) में भी व्यक्तियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सुंदरता की कल्पना की है। इसलिये जो सौंदर्य-भावनाएँ विविध रुचियों पर निर्भर हों, वे परस्पर समान कैसे हो सकती हैं! रुचि-वैचित्र्य के कारण सौंदर्य की भावना और आदर्शों में भी अंतर हो जाता है।

शांता, स्त्री का सौंदर्य जन्म-परक तो होता ही है; परंतु पालन-पोषण, भोजन, व्यायाम, चरित्र और स्वास्थ्य द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। सुंदरता जन्म से होती है, परंतु मा के प्रयत्न से भी पुत्री के सौंदर्य में बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है। सुंदर स्त्री वही कही जा सकती है, जिसका शरीर स्वस्थ और उसके अंग-प्रत्यंगों की रचना—बनावट सम्यक् हो—उनमें सुडौलपन हो। प्राचीन ग्रंथों में सुंदर स्त्री के लक्षण इस प्रकार दिए हैं।

शरीर-गठन

१. मुख—जिसके नयन, नासिका, मस्तक, ओष्ठ आदि अनुपातः से देखने में सुंदर लगें, वह मुख उत्तम होता है। मुख सुगंधि से युक्त हो।

२. मस्तक—विस्तृत और गोल-सा होना चाहिए।

३. केश—भ्रमर की भाँति काले, सुचिक्कण, सुकोमल और कटि तक लंबे हों।

४. नयन—देखने में नील पद्म के समान, बड़े-बड़े हों। पुतली काली और उसके चारो ओर दुग्ध-सी सफ़ेदी हो। पलक के केश भी हों।

५. कपोल—मांस-युक्त, कोमल, गोल और समुन्नत हों।

६. भौंह—सुगोल, काली, एक दूसरी से अलग, कोमल, पतली, बालों से भरी हुई, धनुष के आकार की हों।

७. कान—अधिक मांस-युक्त, भारी न हों। समान गठनवाले और कोमल तथा पतले हों। न बहुत लंबे, न बहुत छोटे ही हों।

८. नासिका—समान हो—न बहुत ऊँची, न बहुत चपटी। नासिका के दोनो छिद्र बराबर हों, सुंदर और छोटे हों।

९. जीभ—कोमल, सरल और रक्तमय हो।

१०. दंतावली—दूध की भाँति सफ़ेद, स्निग्ध, संख्या में पूरे बत्तीस। दोनो पंक्तियाँ समान तथा दाँत समान हों, बड़े-छोटे और टेढ़े न हों। दाँत एक दूसरे से मिले हों।

११. गरदन—जिस स्त्री की गरदन और उदर पर तीन रेखाएँ दिखाई देती हैं, वह सुंदर होती है। रोम-युक्त, शंखाकार, कठिन और रक्त वर्ण की आभास-युक्त ग्रीवा हो।

१२. कंठ—मांसल, गोल हो।

१३. कंधे—छोटे, स्थूल और झुके हुए हों।

१४. बाहु—सीधे, मांस-युक्त, कोमल हों, और उन पर रोम न हों।

१५. वक्षःस्थल—समतल और रोम-रहित हो।

१६. स्तन—रोम हीन, स्थूल, घन और समान हों। (जिसका दाहना स्तन बाएँ स्तन से कुछ बड़ा होता है, वह पुत्रवती होती है) स्तनों का अग्रभाग मनोहर, कोमल और श्याम होना चाहिए।

१७. पीठ—रोम-रहित, मांसल हो। रीढ़ की हड्डी दिखाई न दे।

१८. नाभि—प्रशांत और गंभीर हो।

१९. कटि—सिंहनी की कमर की भाँति पतली हो।

२०. नितंब—भारी, कोमल और मांस-युक्त हों।

२१. जंघाएँ—हाथी की सूँड़ के समान कोमल, मांस-युक्त और रोम-हीन हों।

२२. चरण—पैर की उँगलियाँ परस्पर मिली हुई हों। उनके बीच में ज्यादा खाली जगह न हो, दोनो पैर समुन्नत और सुडौल हों।

उपर्युक्त लक्षणों से यह जाना जा सकता है कि शरीर की सुंदरता के लिये प्रत्येक अंग का सुडौल होना अत्यावश्यक है। रंग का

सुंदरता से उतना घनिष्ठ संबंध नहीं, जितना सुडौलपन का। रंग श्याम हो और शरीर स्वस्थ तथा कांति-युक्त हो, तो सुंदर लगता है। यदि शरीर का रंग गोर हो, पर शरीर अस्वस्थ हो—कपोल बैठ गए हों, केशों की श्यामता नष्ट हो गई हो, उदर आगे मोटा होकर निकल आया हो, ओठ काले पड़ गए हों, और मुख-मंडल चूसे हुए आम की तरह रस-हीन हो गया हो, हाथों में अतिशय रोमावली हो, लंबे, मांस-हीन डंडे की तरह हों, शरीर स्थूल और बेडौल हो, तो इन सब दोषों के कारण सुंदरता नष्ट हो जायगी।

नारी का सौंदर्य दो प्रकार का होता है—(१) बाह्य अर्थात् शारीरिक सौंदर्य (Physical Beauty) और (२) चारित्र्य-सौंदर्य (Beauty of Character)। शरीर-सौंदर्य स्वस्थ शरीर पर निर्भर है और शील-सौंदर्य मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों पर।

शारीरिक सौंदर्य

शारीरिक सौंदर्य की प्राप्ति के लिये पौष्टिक भोजन, नियमित व्यायाम, संयमी जीवन, शुद्ध वायु, स्नान और आवश्यक, किंतु सुंदर वस्त्रालंकार आवश्यक हैं।

भोजन शरीर-रक्षा के लिये अत्यंत आवश्यक है। प्रतिदिन ऐसा भोजन करना चाहिए, जिससे शरीर में ताजा रक्त अधिक मात्रा में तैयार हो; मांस बने और शरीर को शक्ति प्राप्त हो। भोजन के साथ जल भी अनिवार्य है। भोजन ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रोटीन, खनिज-पदार्थ, खाद्योज (Vitamins), वसा (Fats), कर्बोज और जल समुचित मात्रा में मौजूद हों।

उत्तम प्रोटीनवाले पदार्थ—दूध, दही, मट्ठा, पनीर, पत्तेवाले शाक—जैसे पालक, बिना चोकर निकला आटा, गेहूँ का आटा, जौ, बिना पॉलिस का चावल, मटर, दालें, चना, आलू, गाजर, चुकंदर, हाथिचक, साबूदाना, फल और बिना पत्तेवाले शाक—इनमें प्रोटीन मध्यम श्रेणी की होती है।

उत्तम प्रोटीन न मिलने से शरीर की अच्छी वृद्धि नहीं होती। बालक कमजोर रहता है। पेशियाँ कमजोर रहती हैं। रोग-अवरोध की शक्ति कम हो जाती है।

खनिज लवण—शरीर का ४ % भाग खनिज लवणों से बनता है।

वैसे थोड़े-बहुत लवण शरीर के सभी तंतुओं में पाए जाते हैं; पर उनकी विशेष आवश्यकता अस्थि और दाँत बनाने के लिये होती है। इनके विना हमारे अंग, हृदय ठीक काम नहीं कर सकते।

हमारे शरीर में बीस प्रकार के लवण पाए जाते हैं। इनमें कुछ तो क्षार बनाते हैं और कुछ अम्ल। चूना, पोटेशियम, सोडियम, लोहा और मगनेशियम सबसे आवश्यक हैं, और ये क्षार बनाते हैं। अम्ल बनानेवालों में फासफोरस, गंधक और क्लोरिन हैं। भोजन में ये तत्त्व इस प्रकार होने चाहिए, जिससे न अधिक क्षार बने, न अधिक अम्ल।

चूना—निम्न-लिखित पदार्थों में अधिक मात्रा में पाया जाता है—दूध, मट्ठा, पनीर, खाना जल, अखरोट, दाल, फल, पत्तेदार शाक।

फ़ासफ़ोरस—दूध, मट्ठा, सोया, सेम, दाल, अखरोट, गेहूँ, जई, जौ, पालक, मूली, खीरा, गाजर और फूलगोभी में अधिक होता है।

लोहा—दाल, अनाज, पालक, प्याज, मूली, हाथीचक, तरबूज, खीरा, शलजम के पत्ते और टमाटो में अधिक पाया जाता है।

वसा—शरीर में पहुँचकर शक्ति उत्पन्न करती है। जो वसा बहुत-से स्थानों में त्वचा के नीचे जमा हो जाती है, वह गरमी-सरदी से शरीर की रक्षा करती है। निम्न-लिखित चीज़ों में अधिक मात्रा में वसा पाई जाती है। दूध, घी, मक्खन, वानस्पतिक तेल, अखरोट, बादाम, चिलगोज़ा आदि।

कर्बोज (Carbodydrate)—कर्बोज में तीन प्रकार की चीज़ें शामिल हैं-(१) शर्करा—भाँति-भाँति की शकर, (२) श्वेतसार (Starch)—जैसे मैदा, साबूदाना, (३)-काष्ठोज—जैसे फलों और तरकारियों के रेशे। इन रेशों को मनुष्य पचा नहीं सकता। ये ज्यों-के-त्यों आँतों से निकल जाते हैं। कर्बोज निम्न-लिखित पदार्थों में है। इससे वसा बनती है। अनाज, दालें, फल, चावल, साबूदाना, अरारोट, अंगूर, गन्ना, शकरकंद, आम, अंजीर, आलूबुखारा, किशमिश।

खाद्योज (Vitamins)—ये पाँच प्रकार के होते हैं। खाद्योज नं० १ शरीर की त्वचा और श्लैष्मिक कलाओं को मज़बूत बनाता

है। रोगों से रक्षा करता है। भोजन में इसकी कमी से रतौंधी हो जाती है। यह मक्खन, घृत, दूध, करमकल्ला, पत्तोंवाले साग, कुम्हड़ा, गाजर, शकरकंद, टमाटो, मक्की, अंकुर फूटे चनों में पाया जाता है। खाद्योज नं० २ मस्तिष्क, नाड़ियों, हृदय और पाचक इंद्रियों को शक्ति देता है। इसके न मिलने से बेरी बेरी रोग हो जाता है, जो बंगाल में बहुत होता है। टमाटो, अखरोट, पालक, शलजम, मूली, साबित गेहूँ का आटा, जौ, मक्की, बाजरा, उर्द, मूंग, मटर, दाल और चना में यह खाद्योज बहुत मात्रा में होता है। मैदा और पॉलिशवाले चावलों में यह नहीं होता। यदि चावलों का कोई निकाल दिया जाय, तो भी बिना पॉलिश किए चावलों में यह न रहेगा। खाद्योज नं० ३ रक्त को शुद्ध रखता है। इसके अभाव से रक्त विकार हो जाता है, त्वचा में जगह-जगह खून के चकत्ते पड़ जाते हैं। इसकी कमी से अस्थियाँ और दाँत मजबूत नहीं रहते। मेदे ठीक काम नहीं करती और रोग-नाशक शक्ति घट जाती है। यह करमकल्ला, पालक, फूली फूटी हुई दालें, फूले फूटे हुए गेहूँ, चने, नींबू नारंगी के ताजे रस में, टमाटो, गाजर, सलजम के पत्ते, [illegible], धनिया, शकरकंद, अनन्नास और शरीफा में अधिक पाया जाता है। खाद्योज नं० ४ अस्थियों और दाँतों की मजबूती के लिए आवश्यक है। इसके अभाव से बच्चों को रिकेट्स (दाँत देर से निकलना, और पैरों की अस्थियाँ, शरीर का भार न सँभालने के कारण, टेढ़ी हो जाना) हो जाता है। दूध-घी-मक्खन में पाया जाता है। सरसों, तिल आदि वानस्पतिक तेलों में बिलकुल नहीं पाया जाता। जब सूर्य का प्रकाश हमारी त्वचा पर पड़ता है, तो उसकी अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव से यह खाद्योज हमारी त्वचा में बन जाता है। यदि सरसों या तिल के तेल को थोड़ी देर धूप में रख दें, तो यह खाद्योज उसमें बन जाता है। शरीर को थोड़ी देर धूप में नंगा रख कर धूप खाना उत्तम है। शिशुओं के शरीर पर तेल की मालिश कर थोड़ी देर धूप में लिटाना बहुत हितकारी है। खाद्योज ... के अभाव से स्त्री-पुरुष दोनों में निष्फलता देख

है कि भोजन ऐसा होना चाहिए, जिससे पुष्टि मिले, रक्त बने और रोग-नाशक

शक्ति प्राप्त हो *। स्वर्गीय डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा ने प्रत्येक व्यक्ति के लिये भोजन का नमूना निम्न-लिखित प्रकार से स्थिर किया है। यह भोजन २४ घंटे के लिये है। साबित गेहूँ का आटा ६ छटाँक, दाल डेढ़ छटाँक, दूध ८ छटाँक, घृत डेढ़ छटाँक, शर्करा १ छटाँक, चावल २ छटाँक, हरे पत्तोंवाला शाक २ छटाँक, फल २-३ छटाँक, जल यथेच्छ—यह भोजन उत्तम, हलका, पचनशील और सस्ता है। दिमागी परिश्रम करनेवालों के लिये उत्तम है। अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले शर्करा और घृत ज्यादा खा सकते हैं।

भोजन बनाने की विधि—शाकादि को कड़ाई में बहुत देर तक भूनना नहीं चाहिए। इससे उसकी खाद्योज शक्ति नष्ट हो जाती है। दूध को देर तक कड़ाई में औटाने से भी उसके खाद्योज नष्ट हो जाते हैं। चावलों को बहुत देर पानी में न भिगोना चाहिए, और न पकाने पर माँड़ ही निकाला जाय। जिस जल में शाक उबाला जाय, उस जल को फेंकना न चाहिए। रसेदार शाक बना लेना चाहिए। गेहूँ का मोटा आटा खाना चाहिए, यदि चोकर-सहित हो, तो उत्तम है। मैदा हानिप्रद होता है। दालें छिलकों-समेत बनानी चाहिए।

शांता, इसलिये तुमको भोजन की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। भोजन स्वास्थ्य के सिद्धांतों के अनुसार ही ग्रहण करना चाहिए। उत्तम भोजन से शरीर में रक्त की वृद्धि होगी, और रक्त-वृद्धि सौंदर्य के विकास में सहायक होगी।

व्यायाम

शरीर को सुंदर बनाने के लिये भोजन के बाद व्यायाम और शारीरिक परिश्रम का स्थान है। शिक्षिता महिलाओं में शारीरिक परिश्रम के लिये एक प्रकार से घृणा-सी होती है। शिक्षिता महिला अपने गृहस्थी के काम-काज अपने हाथों से करने में लज्जा अनुभव करती है। वह यह चाहती है कि मैं सुख से रहूँ, और मेरी गृहस्थी का काम-काज नौकरानियाँ करें। परंतु वास्तव में यह विचार भ्रम-मूलक है।

---

* देखिए, स्वास्थ्य और रोग (लेखक, डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा, प्रयाग) पृष्ठ १६०-६४।

मिलेगी। इसलिये ऐसा व्यायाम अवश्य करना चाहिए, जिससे हृदय और फेफड़ों का कार्य ठीक रीति से हो।

यहाँ कुछ उपयोगी व्यायाम दिए जाते हैं, जिन्हें मैं नियम-पूर्वक करती हूँ, और मैं तुमसे भी प्रेम-पूर्वक यह आग्रह करूँगी कि तुम इन व्यायामों को नित्य नियमित रूप से अवश्य किया करो।

व्यायाम नं० १—पहले सीधी खड़ी हो जाओ। पैर चौड़े किए जायँ, और हाथ पीछे चूतड़ों पर रहें। गहरी साँस लेती हुई पीछे की ओर झुको। ज्यों ही फेफड़े प्राणवायु से भर जायँ, अपने शरीर को आगे की ओर इस प्रकार झुकाओ कि सिर घुटनों के बीच में आ जाय। जब तुम नीचे झुक जाओ, तो भीतरी वायु को बाहर निकाल दो फिर सीधी खड़ी हो जाओ, और इस प्रकार फिर करो।

व्यायाम नं० २— यह व्यायाम भी पूर्ववत् है। परंतु अंतर सिर्फ़ इतना है कि हाथ इस व्यायाम में सिर के ऊपर सीधी दशा में रहते हैं। जब नीचे की ओर आगे झुका जाय, तो हाथों को यथा-शक्ति पीछे की ओर ले जाना चाहिए। परंतु हाथ पृथ्वी से छूने न पावें।

व्यायाम नं० ३— पैरों को चौड़ा करके खड़ी हो जाओ। हाथों को सिर पर इस प्रकार रक्खो कि कुहनियाँ बग़लों की ओर रहें। अब शरीर के ऊपरी भाग को दोनो बग़लों की ओर झुकाओ। जब बाईं ओर झुकाओ, तो साँस लो, और जब दाईं ओर झुकाओ, तो साँस छोड़ दो। एक ओर कई बार करना चाहिए। जब दस बार यह व्यायाम हो जाय, तो बाईं ओर झुकने पर साँस छोड़नी चाहिए, और दाईं ओर झुकने पर साँस लेनी चाहिए।

व्यायाम नं ४— दरी या फ़र्श पर चित लेट जाओ। अपने हाथों को जाँघों के पास रख लो। टाँग को मोड़ो; फिर जाँघ को मोड़कर पेट पर झुकाओ। फिर झटके से समस्त अधर शाखा को सीधा करो। इसी प्रकार दूसरी अधर शाखा से करो। फिर दोनो अधःशाखाओं को इकट्ठा मोड़ो और फैलाओ।

व्यायाम नं० ५—चित लेट जाओ। दोनो पैरों को सीधा ऊपर उठाओ। फिर दोनो पैरों को पूर्वावस्था में कर लो। झटका मत दो और टाँगों को एकदम मत गिरने दो।

व्यायाम नं० ६—ज़मीन या फ़र्श पर चित लेट जाओ। हाथों

को सिर के बाएँ-दाएँ सीधा फैलाओ। अब धड़ को सीधा रखते हुए उठो, और हाथों से पैरों की उँगलियाँ पकड़ने की कोशिश करो। जब उठो, तो हाथ सिर के साथ-साथ सामने आने चाहिए *।

शुद्ध वायु में, प्रभात-काल में भ्रमण करना चाहिए। प्रातःकाल उपवन, बाग-बगीचों में टहलना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत लाभदायक है।

स्नान

स्वास्थ्य के लिये स्नान आवश्यक है। जहाँ तक हो सके, शीतल जल से ही स्नान करना चाहिए। शीतल जल उत्तेजक और शरीर में स्फूर्ति पैदा करता है। यदि शीतल जल से स्नान करते समय त्वचा में गरमी मालूम हो, उसमें लालिमा देख पड़े, चित्त प्रसन्न हो, तो समझना चाहिए कि जल का ताप ठीक है। नहाने के बाद त्वचा में गरमी न आवे, तो समझना चाहिए कि जल-ताप ठीक नहीं है। यदि आवश्यकता प्रतीत हो, तो शीत-ऋतु में गरम जल से स्नान किया जा सकता है। स्नान प्रातःकाल करना चाहिए। मासिक धर्म के समय, जब योनि से रक्त प्रवाहित हो रहा हो, तब स्नान नहीं करना चाहिए, और न शरीर को ठंड ही लगने देना चाहिए। स्नान करते समय शरीर के प्रत्येक अंग को जल से धोकर स्वच्छ करना चाहिए। स्त्रियों को एकांत में या गुप्त स्थान में, जहाँ किसी व्यक्ति की दृष्टि न पड़े, स्नान करना चाहिए। ऐसे स्थान में वे अपने समस्त अंगों को भली भाँति साफ कर सकती हैं। स्नान के पश्चात् तौलिया से शरीर को भली भाँति रगड़ना चाहिए। स्नान में यदि साबुन का प्रयोग किया जाय, तो यह ध्यान रखना चाहिए कि साबुन में अधिक क्षार न हो, और वह साबुन कपड़े धोने का भी न हो। कारण, इसमें क्षार अधिक मात्रा में होता है। यह क्षार शरीर के लिये हानिकारक है। इससे त्वचा में ख़ुश्की आ जाती है।

* गर्भवती स्त्री को ये कसरतें न करनी चाहिए। इससे गर्भ को हानि पहुँचने की संभावना है।

मेरी राय में 'बंगाल केमिकल्स' और 'टाटा कंपनी' के साबुन अच्छे हैं। इनसे स्नान करने से त्वचा कोमल हो जाती है और साफ़ भी।

जननेंद्रिय की स्वच्छता—बहुतेरी स्त्रियाँ लज्जा के कारण जननेंद्रिय की सफ़ाई नहीं करतीं। जननेंद्रिय की स्वच्छता पर स्त्री का स्वास्थ्य निर्भर है। मुख, दाँत और नेत्रों की सफ़ाई जितनी आवश्यक है, उतनी ही जननेंद्रिय की सफ़ाई भी। जननेंद्रिय की स्थिति शरीर के ऐसे भाग में है, जिसके निकट ही मलाशय का द्वार है। योनि मूत्राशय-द्वार और मलाशय-द्वार के मध्य में होती है। इसलिये जब मल-मूत्र त्याग किया जाता है, तब मल-मूत्र के विषैले द्रव्यों से उसका स्पर्श होता है। ऐसे भी योनि से जो स्राव होता है, वह वहाँ जमा हो जाता है। इससे दुर्गंधि पैदा होती है, और कभी-कभी खुजली भी हो जाती है। भग के आस-पास बाल उग आते हैं, इन्हें भी साफ़ रखना चाहिए। बाल साफ़ करने के पाउडर जो बाज़ार में बिकते हैं, वे हानिकारक हैं; उनमें क्षार अधिक होता है, और उनसे योनि की कोमल त्वचा को हानि भी पहुँच सकती है। यदि बाल साफ़ करने का उत्तम साबुन मिल जाय, तो उसका प्रयोग करना चाहिए। स्त्री को चाहिए कि वह प्रतिदिन स्नान के समय योनि को साबुन से धोवे, और मल-मूत्र-त्याग के बाद भी योनि को जल से धोना ठीक है। मलत्याग के बाद आबदस्त ऐसे लेना चाहिए, जिससे अशुद्ध जल या हाथ योनि की ओर न आवे, अर्थात् हाथ को आगे से पीछे की ओर ले जाना चाहिए।

मासिक धर्म के समय योनि की सफ़ाई का अधिक ध्यान रखना चाहिए। योरप आदि देशों में महिलाएँ 'सेनीटरी टौवल' का प्रयोग करती हैं। जब एक 'टौवल' बिगड़ जाता है, तब दूसरा प्रयोग में लाती हैं। ये 'टौवल' पाँच-छ दिनों में एक-दो रुपए तक के ख़राब हो जाते हैं। भारतीय स्त्रियों के लिये यह व्यय शक्य नहीं। परंतु उन्हें चाहिए कि वे शुद्ध, सफ़ेद और कोमल वस्त्र प्रयोग में लावें। गंदे चिथड़े रोग के जंतुओं को योनि में प्रविष्ट कर देते हैं। योनि के भीतरी भाग को साफ़ करने के लिये बार-बार 'डूस' का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब तक कोई डॉक्टर सलाह न दे, तब तक 'डूस' का प्रयोग न किया जाय।

केशों का सौंदर्य

स्नान करते समय केशों को भी साफ करना चाहिए। केशों की स्वच्छता के लिये कई उपाय हैं, जिनका प्रयोग लाभदायक होता है—

१. आँवला—आँवलों को रात्रि में पीसकर पानी में भिगो देना चाहिए। प्रातःकाल इससे बालों को धोया जाय। इससे बाल स्वच्छ, कोमल और स्निग्ध हो जाते हैं। उनमें चमक आ जाती और श्यामता भी बनी रहती है।

२. बेसन—इसके प्रयोग से भी केश स्वच्छ हो जाते हैं।

३. रीठा—इसके छिलकों को रात में पानी में भिगो देना चाहिए। सबेरे रीठों को मलकर बाल धोने चाहिए। इनसे बाल साफ हो जाते हैं और रेशम-से मुलायम भी।

४. मुलतानी मिट्टी—इस मिट्टी का प्रयोग बहुधा ग़रीब गृहों और ग्रामों में स्त्रियाँ करती हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस मिट्टी से केश साफ हो जाते हैं। परंतु यह केशों की जड़ों में जम जाती है और बाल रूक्ष भी हो जाते हैं।

इस प्रकार केशों को साफ कर धूप में सुखा लेना चाहिए। सुखा लेने के बाद केशों में तेल डाला जाय। आजकल बाज़ार में जितने भी केश-तेल बिकते हैं, उनमें से अधिकांश 'ह्वाइट ऑइल' के बने होते हैं। इनके प्रयोग से बाल कमज़ोर हो जाते और उनकी श्यामता भी नष्ट हो जाती है। यदि उत्तम नारियल का तेल मिल जाय, तो वह सर्वोत्तम होगा। नारियल का तेल केशों को श्याम रखता है। 'कलकत्ता केमिकल' और 'बंगाल केमिकल' और 'टाटा' के नारियल के तेल उत्तम हैं।

केशों को घुँघराले बनाने की विधि—घुँघराले केश बहुत ही सुंदर लगते हैं। इसलिये यदि तुम अपने बालों को घुँघराले बनाना चाहो, तो नीचे लिखी विधि से बना सकोगी। सोहागा २ औंस, गोंद कीकर १ ड्राम, गरम पानी १० छटाँक, तीनों को एक में मिलाकर रख लो। जब ठंढा हो जाय, तो डेढ़ औंस कपूर मिलाकर ब्रश से बालों में लगाओ।

मुख को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिये बाज़ार में 'स्नो,' 'क्रीम' और पाउडर बिकते हैं। परंतु ये सब चीजें त्वचा के लिये हानिप्रद हैं। इनका प्रयोग कदापि न करना चाहिए। मुख और शरीर की कांति बढ़ाने के लिये निम्न-लिखित उबटन अत्यंत उपयोगी हैं—

चंद्रकांता उबटन—हरसिंगार के फूल पानी में भिगो दो। १ छटाँक मैदा और १ छटाँक गुलरोग़न मिला लो। अब फूलों को पानी से निकाल लो, और फूलों में उसे मिला लो। इसका उबटन करो। इससे त्वचा सोने के समान चमकने लगती है।

केशरिया उबटन—सरसों, केशर, हल्दी, गोरोचन, मौली, सोंठ, कपूर, प्रत्येक चीज़ दो-दो टंक, लाल चंदन ४ टंक, लौंग-चिरौंजी १० टंक। सबको मिलाकर सरसों के तेल के साथ पीसकर उबटन तैयार कर लो।

कश्मीरी प्रभा—दस दाने बादाम रात को भिगो दो। प्रातः उनको छीलकर पीस लो, और गुलाब-जल में मिलाकर शीशी में रख लो। रात को सोते समय मुख, गर्दन और हाथों में मल लेना चाहिए।

यौवनावस्था के आरंभ के समय मुँह पर अक्सर मुँहासे हो जाते हैं। इसके लिये दूध में जायफल घिसकर लगाना चाहिए।

स्तन

स्त्रियों के कुच उन्नत, सुगोल और कठोर होने चाहिए। इसके लिये स्त्रियों को जंपर के नीचे 'चोली' अवश्य पहननी चाहिए। जो स्त्रियाँ चोली या 'बोडिस' नहीं पहनतीं, उनके स्तन नीचे लटक जाते और बहुत भद्दे लगते हैं। जिन स्त्रियों के स्तन ढीले हों, उन्हें चाहिए कि वे उन्हें पुष्ट बनाने का प्रयत्न करें। निम्न-लिखित प्रयोग से कुच कठोर हो सकते हैं—

(१) भैंस का दूध ५ तोला, निर्मली ५ तोला, पानी २० तोला, तिल का तेल १० तोला। सबों को मिलाकर मंदाग्नि पर पकावे। जब पानी का अंश जल जाय, तब छान ले। प्रतिदिन इस तेल को स्तनों पर मले, और मलने के बाद चोली पहन ले।

(२) मैनफल ३ माशा, हींग २ माशा कूट-पीसकर, पानी में घोलकर छाती में मले और बाँध ले।

इन प्रयोगों से स्तन उन्नत और कठोर हो जायँगे।

प्यारी शांता, सच्चा सौंदर्य तो स्वस्थ शरीर और शील में है, परंतु शृंगार से शरीर आकर्षक बन जाता है। शृंगार ऐसा हो, जो स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद न हो, और साथ ही देखने में भद्दा भी न लगे। स्त्रियाँ—विशेषकर अशिक्षिता स्त्रियाँ अनावश्यक और भद्दे आभूषणों से अपने शरीर को और भी कुरूप बना लेती हैं।

शील नारी का सच्चा भूषण है!—आजकल अशिक्षित और कुछ शिक्षित महिलाओं में भिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने का रिवाज बढ़ता जा रहा है। इन आभूषणों के लिये घर में कलह होता है। आज किसी स्त्री ने दूसरी स्त्री के पास कोई नवीन ढंग (Design) का आभूषण देखा; बस, वैसा ही आभूषण, अपने लिये भी बनवाने की माँग पति के सामने पेश करती है। यदि माँग पूरी नहीं होती, तो गृह-कलह प्रारंभ हो जाता है। आभूषणों से अनेक प्रकार की हानियाँ हैं—

आर्थिक हानि—आभूषणों से सबसे बड़ी हानि धन की है। सहस्रों रुपए आभूषणों में व्यय किए जाते हैं, और आज उन्हें खरीदकर एक साल बाद बेचा जाय, तो बाजार के भाव के अनुसार उसका मूल्य कम आँका जायगा। जो लोग आभूषणों को स्त्री की सेविंग बैंक कहते हैं, वे भूलते हैं। बैंक में रुपए की वृद्धि होती है; परंतु आभूषणों में रुपया लग जाने से धन की बहुत हानि होती है।

स्वास्थ्य-संबंधी हानि—अनावश्यक आभूषणों से स्वास्थ्य की सबसे ज्यादा हानि होती है। मारवाड़ी स्त्रियों में आभूषणों के लिये विशेष चाव होता है। जो स्त्रियाँ धनी होती हैं, वे तो स्वर्ण और चाँदी के ज़ेवर धारण करती हैं। परंतु जिनके पास धन नहीं, वे पीतल, काँसा और राँगे के आभूषण पहनती हैं। पैरों में इतने ज़ेवर पहनती हैं कि घुटनों तक पैर छड़ों से ढक जाते हैं। वे धोए भी नहीं जा सकते। इसी प्रकार हाथों में भी कुहनी तक चूड़ियाँ पहनती हैं। शरीर का कोई ऐसा अंग शेष नहीं रह जाता, जिसमें गहने न पहने। ऐसी दशा में शरीर की शुद्धि कठिन है। इससे तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं, और शरीर से दुर्गंधि भी आने लगती है।

सौंदर्य की हानि—इन आभूषणों से सौंदर्य की वृद्धि नहीं होती।

शरीर भद्दा, भरा और हास्यास्पद प्रतीत होने लगता है। पैरों में मोटे-मोटे कड़े सचमुच ऐसे ही मालूम पड़ते हैं, जैसे क़ैदियों के पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में कड़े तो हथकड़ियाँ होती ही हैं। नाक को छिदाकर उसमें इतने बड़े नथ पहने जाते हैं कि नाक की सफ़ाई नहीं हो सकती। ये सब ज़ेवर कुरूपता पैदा करते हैं।

ज़ेवर हत्या और चोरी के कारण हैं—अनेक स्त्रियाँ आभूषणों के कारण अपहरण की जाती हैं। आभूषणों की चोरियाँ भी अधिकता से होती हैं, और अनेक अवसरों पर इनके कारण स्त्रियों और बालकों की जानें जाती हैं। इसलिये आभूषणों के इस बढ़ते हुए रोग को अवश्य रोकना चाहिए।

आभूषण सुंदर और कम-से-कम संख्या में धारण करने से ही स्त्री के सौंदर्य में आकर्षण उत्पन्न हो सकता है। गले में हार, हाथ की उँगली में अँगूठी और हाथों में दो-दो, चार-चार चूड़ियाँ। बस, इतना ज़ेवर काफ़ी है। पैरों में किसी प्रकार का आभूषण न पहनना चाहिए। नूपुर धारण करने से उँगलियाँ टेढ़ी और ख़राब हो जाती हैं। आजकल पैर का एक नूतन आभूषण प्रचलित हुआ है, वह है 'शकुंतला-चेन'। यह आभूषण गुजरात में अधिकांश स्त्रियाँ पहनती हैं। मैंने गुजराती महिलाओं को देखा है, वे कितनी स्वच्छ और सुंदर लगती हैं। केवल एक साड़ी और जंपर पहनती हैं। परंतु इन दोनों को वे ऐसे मोहक ढंग से धारण करती हैं कि बस देखते ही बनता है। उनकी चाल, उनका कांति-पूर्ण मुस्किराता हुआ मुख और सादगी अनुकरणीय है।

साड़ी लोकप्रिय पोशाक—स्त्रियों की पोशाक बहुत सादी है। परंतु अशिक्षित महिलाओं में घाँघरे और ओढ़नी पहनने का रिवाज है। पंजाब, सिंध आदि प्रांतों में हिंदू-महिलाओं में सलवार, कुरता और ओढ़नी का अधिक रिवाज है परंतु जैसे-जैसे स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार बढ़ता जा रहा है, वैसे वैसे वे साड़ी को अपनाती जा रही हैं। निस्संदेह स्त्री के लिये साड़ी ही सर्वोत्तम पोशाक है। अनेक योरपियन, अमेरिकन और मुस्लिम स्त्रियाँ भी साड़ी पहनने लगी हैं। साड़ी सबसे अधिक लोकप्रिय पोशाक है। पारसी महिलाएँ तो साड़ी की नवीन-नवीन 'डिज़ाइनें' निकालने में फ़्रांस की सुंदरियों के फ़ैशन को भी मात करती हैं। आरंभ में 'बनारसी साड़ियों' का अधिक

प्रचार था। धनी लोग अपनी स्त्रियों के लिये 'बनारसी साड़ियाँ' खरीदा करते थे। इन साड़ियों की पूरी जमीन और किनारी रुपहले और सुनहरी गोटे के बेल-बूटों से चित्रित होती है। परंतु अब स्त्रियाँ इसे कम पसंद करती हैं। जार्जेट और क्रेप का चलन अधिक है। साड़ी, जंपर, चोली, पेटीकोट, बस यही स्त्री की सामान्य पोशाक है। कितनी कम, कितनी सादी, सस्ती परंतु सुंदर। परंतु स्त्रियों को फैशन के मोह में न पड़ना चाहिए। फैशन के मोह में पड़कर अपने पति के परिश्रम की कमाई का धन बरबाद करना अनुचित है।

प्रिय बहन, मैंने सौंदर्य के विषय में तुम्हें अनेक बातें बतलाई हैं; परंतु इनका संबंध केवल बाह्य सौंदर्य से है। शरीर का सौंदर्य स्वास्थ्य और वस्त्रालंकार पर अवलंबित है। परंतु केवल शारीरिक सौंदर्य से ही स्त्री का सौंदर्य पूर्ण नहीं होता, स्त्री का सच्चा सौंदर्य तो उसके सुंदर गुणों में झलकता है। सतीत्व इसका सच्चा भूषण है। सदाचार, सहानुभूति, उदारता, दया, सचाई, त्याग आदि गुणों से शरीर का सौंदर्य अधिक कांति-पूर्ण हो जाता है। इसलिये तुम्हें अपने आंतरिक सौंदर्य की वृद्धि करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह विषय बहुत गंभीर है, इसलिये अगले पत्रों में इस पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगी। आज केवल इतना ही सही।

तुम्हारी
स्नेहमयी सहेली
इंदिरा

रजोदर्शन

शांति-निवास, आगरा
१२ एप्रिल, १९३७

कुमारी बहन शांता,

तुम ससुराल में बड़े आनंद से जीवन बिता रही हो, यह जानकर मुझे हार्दिक उल्लास है। आज तुम्हारे पत्र से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुमने अपने इस पत्र में अपनी एक नई कठिनाई के विषय में लिखा है—"प्रिय बहन, प्रकृति ने रजोदर्शन का रोग नारी को क्यों दिया? यह मासिक धर्म क्या है? क्या इससे गर्भ का संबंध है? मुझे यह आकर मासिक धर्म हो गया। बस, पाँच छः दिन तक 'उनसे' अलग रहना पड़ा। मुझे भोजन तक न बनाने दिया गया!"

रजोदर्शन क्या है?

जब कुमारी की आयु बारह वर्ष की हो जाती है, तब उसके गर्भाशय (Uterus) से योनि द्वारा प्रति अट्ठाईसवें दिन रक्त या रज प्रवाहित होता है। जिस स्त्री को रज आता है, उसे रजस्वला और रजोदर्शन के प्रथम दिन से सोलहवें दिन तक का समय ऋतु-काल कहलाता है। रजोदर्शन स्त्री के शरीर का स्वाभाविक व्यापार है। इसे रोग न समझना चाहिए।

यौवनावस्था के प्रारंभ के समय, अर्थात् बारह वर्ष की आयु में, कुमारी की बाह्य और आंतरिक जननेंद्रियों में परिवर्तन और योनि की वृद्धि भी होने लगती है। भग के आस-पास लोम उत्पन्न होने लगते हैं। स्तनों में भी वृद्धि होने लगती है। काम-वासना भी अनुभव होने लगती है। इनके साथ-साथ मानसिक परिवर्तन भी होने लगते हैं। कुमारी में अब लज्जा का भाव बढ़ने लगता है, और वह जननेंद्रिय के रहस्य और उनकी वृद्धि के कारण जानने के लिये

उत्सुक हो जाती है। अब डिंब-ग्रंथियों (Ovaries) में डिंब (Ovum) की रचना शुरू हो जाती है। यह डिंब या अंड डिंबग्रंथि से डिंब-प्रणाली (Fall opian Tube) में पहुँच जाता है। डिंब-ग्रंथि से गर्भाशय तक अंड के पहुँचने में सात से पंद्रह दिन तक का समय लग जाता है। डिंब-ग्रंथि में डिंब की रचना प्रथम रजोदर्शन से प्रारंभ होती है, और चालीस-पैंतालीस वर्ष तक डिंब की रचना प्रतिमास जारी रहती है। जब संभोग के समय पुरुष का वीर्य योनि द्वारा गर्भाशय में प्रवेश करता और वीर्य के कीटों से अंड का संयोग होता है, तब गर्भ-धारण होता है। इससे यह स्पष्ट है कि गर्भ-धारण का रजोदर्शन से घनिष्ठ संबंध है।

प्रथम मासिक धर्म

कुमारी में प्रथम रजोदर्शन या मासिक धर्म एकदम बिना किसी शारीरिक परिवर्तन के सहसा नहीं होता। मासिक धर्म से पूर्व स्तनों में सूजन आ जाती और उनसे श्वेत श्लेष्मा (white mucus) भी निकलता है।

ऐसा भी देखा गया है कि इन लक्षणों के कई महीने बाद मासिक धर्म हुआ। प्रारंभ में मासिक धर्म अनियमित होता है। कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन महीने तक मासिक धर्म नहीं होता। परंतु जब नियमित रूप से होने लगता है, तब लगातार प्रति २८ वें दिन होता है। जो स्त्री पूर्ण स्वस्थ होती है, उसे मासिक धर्म ठीक २८ वें दिन होता है। रक्त तीन से छ दिन तक प्रवाहित होता है।

मासिक धर्म के समय के लक्षण

योनि से रज प्रवाहित होने से चार-पाँच दिन पूर्व से गर्भाशय की श्लैष्मिक कला (inner mucus memdrare) अधिक रक्तमय होने के कारण पहले से दूनी या तिगुनी मोटी और कोमल हो जाती है। यह मोटापन नसों में अधिक रक्त भर जाने से हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? अभी तक किसी चिकित्सक ने इसे नहीं जान पाया। इसके उपरांत गर्भाशय से रक्त बहना आरंभ होता है।

रक्त कैसे प्रवाहित होता है?

केशिकाएँ (cepil laries) जब अधिक रक्त-पूर्ण हो जाती हैं,

और उनमें से रक्त बहकर श्लैष्मिक कला के नीचे कई जगह इकट्ठा हो जाता है। अंत में रक्त-भर से यह श्लैष्मिक कला फट जाती और रक्त बहकर गर्भाशय में आ जाता है। इस रक्त में अनेक 'सेलें' भी मिली रहती हैं। मासिक धर्म के रक्त में श्लेष्मा मिली रहने से खटिक (calcirens) अधिक होने पर भी रक्त जम नहीं सकता। रक्त का रंग गहरा लाल होता है, और इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इसमें एक विशेष प्रकार की गंध आती है।

ये उपर्युक्त परिवर्तन केवल गर्भाशय की त्वचा में ही होते हैं, ग्रीवा, डिंब-ग्रंथि, डिंब-प्रणाली आदि में नहीं। ग्रीवा, डिंब-ग्रंथि और प्रणाली केवल अधिक रक्तमय हो जाते हैं। गर्भाशय और योनि से स्राव भी होता है।

उत्तेजना का अनुभव

मासिक धर्म से एक-दो दिन पूर्व एक विचित्र संवेदनशीलता और स्नायु-संबंधी उत्तेजना का अनुभव होता है। उदर में कुछ भारीपन-सा अनुभव होता है। आलस्य, अरुचि, कमर, कूल्हे तथा पेड़ू में भारीपन और दर्द मालूम होता है। परंतु रक्त-प्रवाह के साथ-साथ ये सब लक्षण विलीन हो जाते हैं।

शुद्ध रक्त के लक्षण

भावप्रकाश में लिखा है कि जो रक्त खरगोश के रक्त के समान अथवा लाख के रस के समान हो, और जो वस्त्र में लगा हुआ धोने से छूट जाय, वह रज उत्तम है। मासिक धर्म के प्रारंभिक दिन प्रथम बार जो रक्त प्रवाहित होता है, उसमें 'श्लेष्मा' और सेल (epitheliol cells) मिली रहती हैं। दूसरी बार के रक्त में चमक होती है, और प्रायः शुद्ध होता है। तीसरी बार के रक्त में 'विशुद्ध रक्त' की थोड़ी मात्रा होती है। पुनः श्लेष्मा निकलती है, परंतु 'सेलें' नहीं निकलतीं।

रक्त की मात्रा

रक्त तीन से छ दिन तक प्रवाहित होता है, और इन दिनों में पाँच से छात औंस तक रक्त निकल जाता है। यदि रक्त छ दिन से अधिक या मात्रा में अधिक निकले, तो ठीक नहीं। प्रतिदिन 'तीन

'नेपकिन' से अधिक प्रयोग करना अतिशयता है। प्रथम तीन दिनों में रक्त अधिक मात्रा में निकलता है।

प्राचीन संस्कृत के वैद्यक ग्रंथों में ऋतुमती के लिये बड़े कड़े नियम निर्धारित किए गए हैं, जिनका आजकल पालन करना 'असभ्यता' में गिना जायगा। रजस्वला स्त्री को 'अछूत' माना जाता है। उसे यहाँ तक अशुद्ध माना जाता है कि कई जातियों में तो यह रिवाज है कि रजस्वला स्त्री को एक अलग कमरा दे दिया जाता है। उसी में वह पाँच-छ दिन रहती है। वहीं उसे बर्तन दे दिए जाते हैं; उन बर्तनों में उसे खाना दूर से दे दिया जाता है, और उसे समस्त गृह में स्वतंत्रता से घूमने-फिरने की आज्ञा नहीं होती। इस प्रकार इन दिनों उससे बड़ा बुरा व्यवहार किया जाता है। वास्तव में उचित तो यह है कि इन दिनों में उसको अधिक विश्राम, मानसिक शांति और शुद्ध वायु, जल और सात्त्विक भोजन मिले। परंतु उसे एक प्रकार से कारागार में बंदी बनाकर इन समस्त सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है।

रजस्वला की दिनचर्या

इसमें संदेह नहीं कि रजोदर्शन-काल में स्त्री एक विशेष शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में होती है; अतः उसे इस समय स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ विशेष नियमों का पालन करना आवश्यक है। यदि इन नियमों का पालन न किया गया, तो उसे विविध रोगों से आक्रांत होना पड़ेगा। आजकल इन आवश्यक नियमों के पालन न करने का ही परिणाम है कि अधिकांश स्त्रियाँ मासिक धर्म-संबंधी प्रदर (Lencorrhoe) आदि भयंकर रोगों का शिकार बन जाती हैं।

ब्रह्मचर्य—रजोदर्शन-काल में स्त्री को ब्रह्मचर्य का पूरी तरह पालन करना चाहिए। अपने विचारों को शुद्ध, पवित्र रखना चाहिए। मन में कोई अश्लील और कामोत्तेजक विचार न लाना चाहिए। इस समय मैथुन करना स्त्री और पुरुष दोनो के लिये हानिकर है। मासिक धर्म के समय संभोग करने से गर्भ-स्थिति नहीं हो सकती। स्त्री की जननेंद्रियाँ रक्त-पूर्ण और अधिक कोमल हो जाती हैं, इसलिये मैथुन करने से जननेंद्रिय को हानि पहुँचने की विशेष संभावना

है। इस समय मैथुन का आनंद भी प्राप्त नहीं हो सकता। पुरुष को दूषित रक्त से रोग भी पैदा हो सकते हैं।

शीत से रक्षा—रजस्वला स्त्री को अपने शरीर की शीत से रक्षा करनी चाहिए। शरीर के किसी भी भाग को ठंड न लगने देना और विशेष रूप से हाथ, पैर, उदर और योनि को ठंड से बचाना चाहिए। शीतल जल का भी व्यवहार न करना तथा भूलकर भी शीतल जल से योनि को न धोना चाहिए। शीत से रक्षा के लिये काफ़ी गरम वस्त्र पहनने चाहिए। शीत वायु से भी अपने अंगों की रक्षा करनी चाहिए। शीत रजस्वला का सबसे बड़ा शत्रु है।

रजस्वला के शरीर और जननेंद्रिय में शीत लग जाने से गर्भाशय-संबंधी अनेकों रोग पैदा हो जाते हैं।

विश्राम—रजस्वला को विश्राम की अधिक आवश्यकता होती है। इसलिये उसे गृह के ऐसे काम-काज नहीं करने चाहिए, जिनमें अधिक परिश्रम करना पड़े, और फलतः शरीर में थकावट अनुभव होने लगे। मासिक धर्म के समय अधिक दौड़ना, भागना और यात्रा करना उचित नहीं है।

सात्त्विक भोजन—रजस्वला को हलका, पचनशील और सात्त्विक भोजन करना चाहिए। उत्तेजक और मसालेवाले भोजन न करना चाहिए। अधिक गर्म और अधिक ठंडे पदार्थ सेवन न करने चाहिए। गरमी में बर्फ का सेवन भी न करना चाहिए।

शयन—रजस्वला को दिन में न सोना चाहिए। और, आकाश के नीचे खुले स्थान में, ठंड में, सोना हानिकर है।

शुद्धता—रजस्वला को शुद्धता की ओर काफ़ी ध्यान देना चाहिए। मासिक धर्म-काल में स्नान न करना चाहिए। परंतु दिन में तीन-चार बार योनि को साफ़ करना चाहिए। 'नेपकिन' बदलकर दूसरी लगा लेनी चाहिए। दिन में तीन-चार नेपकिन प्रयोग में लानी चाहिए। नेपकिन शुद्ध हो। मैले वस्त्र योनि से स्पर्श करना भी हानिकार है।

चित्त की प्रसन्नता—रजस्वला को किसी प्रकार का शोक अथवा चिंता न करनी चाहिए। अपना मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। इस समय शोक-चिंता करने से शरीर पर बुरा असर पड़ता है।

स्नान—रजस्वला को चौथे या छठे दिन जब रक्त बिलकुल बंद हो जाय, गरम जल से स्नान करना चाहिए। शरीर के समस्त अंगों को भली भाँति धोना चाहिए। योनि को भी गरम जल से भली भाँति साफ किया जाय। उसे केवल बाहर से ही नहीं, प्रत्युत भीतर से भी उसके अंग-प्रत्यंग को अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

पति-दर्शन—स्नानादि के पश्चात् स्त्री को चाहिए कि वह स्वच्छ और उत्तम वस्त्र धारण कर, सब प्रकार से सुसज्जित हो, सृष्टि-नियंता, जगत्कर्ता परमात्मा की आराधना करे, और अपने जीवन को मंगलमय और सुखी बनाने के लिये प्रभु से प्रार्थना करे। इसके पश्चात् यदि पति उपस्थित हो, तो स्त्री को अपने प्राणेश्वर के चरणारविंद में प्रणाम कर उनका शुभ दर्शन करना चाहिए। इस समय स्वभावतः स्त्री के मन में प्रसन्नता और मुख पर मुस्किराहट और हृदय में उल्लास होता है।

शरीर में कामोद्दीपन पूर्णतया व्याप्त हो जाता है। इस समय स्त्री में संभोग की लालसा भी प्रबल होती है। संभोग का वास्तविक उद्देश्य तो संतानोत्पत्ति ही है। आनंद-प्राप्ति तो गौण उद्देश्य है।

गर्भाधान

अतः पति-पत्नी को प्रसन्न-चित्त हो सहवास करना चाहिए। रजो-दर्शन के प्रथम दिन से १६वें दिन तक ऋतुकाल होता है। अर्थात् १६वें दिन तक गर्भ धारण हो सकता है। इसी अवधि में स्त्री की डिंब-ग्रंथि में डिंब तैयार होकर डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय या जरायु में आ जाता है। यदि इस समय पुरुष के वीर्य के शुक्र-कीटों से उस डिंब का संयोग हो जाय, तो गर्भ-स्थिति हो जाती है। अतः गर्भ-धारण के लिये ऋतु-स्नान के बाद के दस दिन सबसे अधिक फलप्रद हैं।

प्रिय बहन शांता, यह विषय बड़ा महत्त्व-पूर्ण, गहन और स्त्री-जाति के लिये सबसे उपयोगी है; परंतु दुःख है, इसी विषय की ओर स्त्री-जाति की सबसे अधिक उपेक्षा है! रजो-दर्शन के नियमों

का यथोचित पालन न करने से नारी-जाति को जो बलिदान करने होते हैं, उन्हें यहाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं।

समय अधिक हो गया है, मुझे भोजन तैयार करना है, इसलिये पत्र को अब यहीं समाप्त करती हूँ।

तुम्हारी
इंदिरा

दांपत्य प्रेम की साधना

शांति-निवास, आगरा
१६ एप्रिल, १९३०

प्रिय बहन शांता,

तुम्हारे पति तुम्हें अत्यधिक प्रेम करते हैं। तुम्हारे प्रेम में वे इतने अनुरक्त हैं कि निशि-दिन तुम्हारे रूप-माधुर्य का पान करने को लालायित रहते हैं। तुम भी उनसे बहुत प्रसन्न हो, और उन्हें हृदय से प्रेम करती हो। तुमने अपने पत्र के अंत में लिखा है—"बहनजी, उस दिन मेरी एक सहेली ने कहा, पति का प्रेम विवाह के सात-दो वर्ष तक रहता है। यह तो एक प्रकार की मादकता है। यह प्रेम का नशा वैसे ही उतर जाता है, जैसे शराब का नशा। मुझे ऐसी बातें सुनकर बड़ी चिंता हुई। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो मेरा सुख-स्वप्न टूटनेवाला है।"

प्रेम कला है

शांता, यह वचन किसी दांपत्य सुख से वंचित महिला के हृदय का करुण-संगी है, कटु अनुभूति है। प्रेम एक कला है। जिस प्रकार किसी कला का आनंद प्राप्त करने के लिये कलाविद् को अभ्यास, प्रयत्न और उद्योग करना पड़ता है, तथा सतत प्रयत्न के उपरांत उसे कला का आनंद उपलब्ध होता है, ठीक उसी प्रकार प्रेम की साधना आवश्यक है। जो पति-पत्नी यह समझ लेते हैं कि हममें परस्पर प्रेम है, और यह प्रेम आजीवन वैसा ही बना रहेगा, तथा अपनी इस धारणा पर पूरी आस्था करके प्रेम की वृद्धि के लिये प्रयत्नशील नहीं रहते, उन्हें अंत में निराश होना पड़ता है। आज जो दंपति दुखी हैं, उनके दुख का अधिकांश मूल-कारण यही है। विवाह के समय प्रेम की जो मादकता होती है, उसे जीवन-पर्यंत बनाए रखने के लिये साधना

की अपेक्षा है। ऐसा देखा गया है कि पति-पत्नी में प्रगाढ़ प्रेम तो है, परंतु फिर भी वे एक दूसरे से संतुष्ट नहीं हैं ! ऐसे दंपतियों की संख्या सबसे अधिक मिलेगी, जो अपने विवाह के समय अपने पति या पत्नी में अत्यंत अनुरक्त थे; किंतु कुछ वर्षों के उपरांत उनके हृदय में अंतर पड़ गया। प्रायः समस्त दंपतियों के लिये विवाह का स्थायी आनंद प्राप्त करना साध्य है; परंतु इसके लिये प्रेम-साधना की आवश्यकता है। विवाहित जीवन की कला का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार अपना जीवन बनाना अत्यंत आवश्यक है। जिस प्रकार एक चित्रकार 'टैकनीक', कूचिका और विविध रंगों के द्वारा एक सुंदर चित्र बनाता है, उसी प्रकार पति-पत्नी भी विवाह के 'टैकनीक' का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को सरस, सुखी और संतुष्ट बना सकते हैं। परंतु ऐसे दंपति कितने हैं, जो विवाहित जीवन की कला की सत्ता स्वीकार करने को तैयार हों, और उसे स्वीकार कर सीखें।

पुरुष का मनोविज्ञान

प्रिय शांता, पति के शरीर पर अधिकार प्राप्त करना सरल है, परंतु हृदय पर अधिकार जमाना एक समस्या है, जिसके समाधान में नारी का सारा जीवन व्यतीत हो जाता है। यदि पत्नी ने पति के हृदय पर अपना शासन प्राप्त नहीं किया, तो उसका शरीर पर अधिकार करना कोई मूल्य नहीं रखता। वह समय समीप आते देर नहीं लगती, जब उसका पति के शरीर पर से भी अधिकार चला जाता है। पुरुष-हृदय पर शासन करने के लिये यह अतीव आवश्यक है कि उसके मनोविज्ञान का ज्ञान भली भाँति प्राप्त कर लिया जाय। पुरुष और नारी की प्रकृति, विचार, मनोभाव और संवेदनाओं में अंतर होता है, और उस अंतर को समझ लेना चाहिए। जो पत्नी अपने पति का स्थायी प्रेम पाना चाहती है, उसका कर्तव्य है कि वह पुरुष के हृदय को भली भाँति सहानुभूति-पूर्वक समझने का प्रयत्न करे।

पति का स्वभाव कैसा है ? उसकी प्रकृति कैसी है ? उसके विचार कैसे हैं ? उसके मनोभाव और भावनाएँ कैसी हैं ? उसकी आवश्यकताएँ कौन-कौन-सी हैं ? वह पत्नी से कैसे विचारों, भावों और व्यवहार की आशा करता है ? उसे किस-किस कार्य में पत्नी के

सहयोग की आवश्यकता प्रतीत होती है ? वह पत्नी से किस रूप में और कैसी सहायता का इच्छुक है ? वह पत्नी में किन-किन गुणों को चाहता है ? पति में कौन-कौन-से गुण और अवगुण हैं ?—ये सब ऐसी बातें हैं, जिनका पत्नी को बड़ी गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए।

आज्ञा-पालन

पुरुष शक्ति, बल, ओज, वीरता, पराक्रम का पुजारी रहा है। प्रकृति ने उसे ऐसा वरदान दिया है, जिससे वह आदि काल से शासन, अनुशासन, नियंत्रण का प्रेमी रहा है। पुरुष शासन करना अपना प्रकृति-प्रदत्त कार्य समझता है। उसे संसार के कार्यों में संलग्न रहना पड़ता है, इसलिये उसकी प्रकृति ऐसी बन गई है। वह शासन करना—आज्ञा देना जानता है, और चाहता है कि दूसरे उसके शासन को स्वीकार करें—उसकी आज्ञा का पालन करें। वह यह बात भली भाँति जानता है कि वह गृह-स्वामी है, और स्वामी की हैसियत से गृह के व्यक्तियों को उसकी आज्ञा माननी चाहिए। पत्नी उसकी प्रेमिका होती है। इसलिये वह उससे यह आशा करता है कि अन्य परिजनों की अपेक्षा वह उसकी आज्ञा का पालन बड़े प्रेम-पूर्वक करेगी। पति यह चाहता है कि पत्नी उसकी अनुगामिनी बनकर रहे। आजकल योरप, अमेरिका आदि देशों में 'स्त्री-स्वाधीनता-आंदोलन' बड़े जोरों से चल रहा है, और उसकी लहर हमारे देश में भी आ गई है। मेरा तो यह ध्रुव विश्वास है कि स्त्री 'स्वतंत्र' भले ही हो जाय, परंतु उसकी स्वाधीन-प्रियता का पुरुष की अधिकार-प्रियता पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। पुरुष की इस प्रकृति में कोई अंतर पैदा नहीं हो सकेगा। अँगरेजी के सुप्रसिद्ध, विश्व-विख्यात साहित्यिक लेखक श्रीजॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक स्थान पर लिखा है—

"स्त्रियाँ स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर भी पुरुषों की आश्रिता रहेंगी। इसका कारण यह है कि एक स्त्री एक स्त्री के बजाय पुरुष को अधिक समझती [illegible]। उनकी स्वाभाविक रुचि पुरुष के अधीन रहने की है। वह [illegible] करना नहीं चाहती। इसका प्रमाण यदि आप [illegible] मेट ब्रिटेन की दशा देखने को कहूँगा। वहाँ

पिछले सत्रह वर्ष से स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। वे पार्लियामेंट के चुनाव में उसी प्रकार भाग ले सकती हैं, जिस प्रकार पुरुष। उनमें प्रचुर शिक्षित महिलाएँ भी हैं, विदुषी पंडिता भी हैं, राजनीति-विज्ञान-वेत्ता भी हैं। इतना होने पर भी पार्लियामेंट में स्त्री-सदस्यों की संख्या तीन है, और पुरुष-सदस्यों की छ सौ से अधिक। सबसे विचित्र बात तो यह है कि ग्रेट ब्रिटेन में स्त्री-मतदाताओं की संख्या पुरुषों से बहुत अधिक है *।"

जो पुरुष स्त्री को 'दासी' समझते और उससे वैसा ही दुर्व्यवहार करते हैं, मैं उनकी नीति को पुष्ट नहीं करती। परंतु मैं उन नवीन विचारों के पोषक पतियों के बारे में कहती हूँ, जो स्त्री की स्वाधीनता की माँग का समर्थन करते हैं। वे यह चाहते हैं कि स्त्री अपने मनोऽनुकूल कार्य तो करे, परंतु हमारी सम्मति की भी क़द्र करे। वह यह न समझ ले कि 'पति' नाम-धारी व्यक्ति की सम्मति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं। मेरा निजी अनुभव यह बतलाता है कि प्रेमी पति अपनी पत्नी को ऐसी आज्ञा कभी नहीं दे सकता, जिसका उससे अहित हो, अथवा वह अपनी पत्नी से कोई ऐसा कार्य कराने की आशा नहीं करता, जो उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो। जब पति प्रिय पत्नी के मुस्किराते हुए मुख से ये शब्द "आपकी जैसी इच्छा होगी, मैं वैसा ही करूँगी। आपकी इच्छा मेरी ही इच्छा है। हम दोनो के हृदय एक हैं, तब इच्छाओं में भिन्नता कैसी" सुनता है, तो उसे अपार हर्ष होता है। उसके हृदय में जो शासन और अधिकार की भूख होती है, वह इन शब्दों से तृप्त हो जाती है। जो पति सच्चे हृदय से अपनी पत्नी को प्यार करता है, वह अपना शासन बल-प्रयोग द्वारा कभी नहीं करना चाहेगा। जहाँ विमल हृदय का निर्मल प्रेम है, वहाँ पाशविक बल की क्या आवश्यकता। वह 'हिटलर' की भाँति शक्ति-प्रदर्शन द्वारा अपनी 'आज्ञाओं' को पालन कराने के लिये बाध्य नहीं कर सकता। लोकतंत्र-वाद की भाँति एक प्रेमी पति की शासन-सत्ता का आधार गृहिणी की इच्छा होती है।

एक स्त्री यह चाहती है कि वह महिला सभा के सदस्य में

* 'अर्जुन' (महिला-अंक साप्ताहिक) ७ नवंबर, १९३३ ई०।

रमेश ने कहा—"लिखने की मनःस्थिति इस समय मौजूद है, और इसे भागने का मौका न देना चाहिए। मुझे माफ करो प्रिये! आज अकेली ही चली जाओ। किसी दूसरे दिन तुम्हारे साथ जरूर चलूँगा।"

आशा नाराज होकर, तेजी से उठकर गई, और 'कार' में बैठकर सिनेमा चल दी। रात को साढ़े दस बजे वह वापस आई। रमेश लेख लिखने के बाद कहीं टहलने चला गया। वह भी ठीक उसके बाद वापस आया। नौकर से ज्ञात हुआ कि आशा ने खाना नहीं खाया है, और वह अपने शयनागार में है। रमेश उसके शयनागार में पहुँचा, और उससे भोजन करने के लिये कहा। परंतु वह लेटी रही। दोनो में बहुत कुछ वाद-विवाद होता रहा। परंतु उन्होंने एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नहीं किया।

आशा ने कहा—"तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने भारी भूल की। अगर किसी मामूली आदमी से शादी करती, तो शायद आज से अधिक सुखी होती।"

रमेश ने कहा—"ये ऐसे शब्द हैं, जिन्हें मैं हर्गिज बरदाश्त नहीं कर सकता। उचित-अनुचित का विचार तुम्हें जरा भी नहीं रह गया। ऐसे अपमान-जनक शब्द सुनने के बाद शायद कोई स्वाभिमानी पति अपनी स्त्री से संबंध रखना पसंद न करेगा। तुम अपने को क्या समझती हो, परी, रानी या क्या?"

आशा ने कहा—"चाहे मैं संसार में सबसे ख़राब स्त्री ही क्यों न होऊँ, लेकिन तुम्हारी धौंस सहने के लिये अब मैं तैयार नहीं हूँ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल रमेश ने अपनी पत्नी आशा के लिये एक पत्र लिखा, जिसका आशय यह था कि हम लोग गुप्त रूप से अपने संबंध तोड़ सकते हैं। किसी को कानोंकान खबर भी न हो। तुम्हारी क्या राय है?

बस, आशा अपने पितृगृह चली गई।

पति से विलग हुए आशा को पंद्रह दिन हो गए। परंतु वह इन दिनों सुखी न थी। पग-पग पर उसे रमेश की याद आती थी। कभी उसे अपने किए पर पश्चात्ताप होता था। दूसरी ओर रमेश

भी सुखी न था। उसके हृदय में भी एक विचित्र सूनापन आ गया था। काम में उसका जी न लगता था। लिखने की मनःस्थिति किसी समय उत्पन्न होती न थी। एक दिन रमेश का ससुर उसके घर आया।

ससुर ने पूछा—"क्या आशा और तुम्हारे बीच झगड़ा हो गया है?"

रमेश ने कहा—"क्या मैं जान सकता हूँ, आप क्यों पूछ रहे हैं?"

ससुर ने कहा—"आशा जब ढेरों सामान लेकर आई, तब मुझे संदेह हो गया था कि कुछ झगड़ा हो गया है, पर आशा ने नहीं बतलाया। उसे स्नायु-रोग हो गया है, और थकी-सी, मुर्झाई हुई-सी रहती है। किसी मित्र से मिलना पसंद नहीं करती। वह इतने दिनों से मेरे पास है और तुम एक दिन भी न आए।"

अंत में ससुर के प्रयत्न से पति-पत्नी में मेल हो गया। दोनों ने एक दूसरे के प्रति अपने हृदय के स्नेहमय उद्‌गार प्रकट किए, और अपनी गलतियों के लिये क्षमा माँगी।

यह कहानी कल्पित होते हुए भी सच्ची है। ऐसे मतभेद प्रत्येक दंपति के विवाहित जीवन में पैदा हो जाते हैं। किंतु जहाँ सहानुभूति और एक दूसरे के हृदय को समझने की इच्छा होती है, वहाँ शीघ्र ही ये मतभेद दूर हो जाते हैं। परंतु जहाँ इन दोनों का अभाव होता है, वहाँ मतभेद और भी अधिक बढ़ते जाते हैं।

अतः जीवन में जब ऐसे मतभेद पैदा हो जायँ, तब पति-पत्नी को चाहिए कि वे उदार हृदय से सहानुभूति-पूर्वक एक दूसरे के विचार-कोण और भावना को समझने का प्रयत्न करें। गलतफहमी के दूर होते ही मतभेद सर्वथा दूर हो जायगा। ऐसे अवसर पर पति-पत्नी को अपना गर्व त्यागकर अपनी भूल स्वीकार कर लेनी चाहिए।

श्रद्धा और विश्वास

विश्वास और श्रद्धा का जीवन में बड़ा महत्त्व है। यदि 'कोश' में श्रद्धा और विश्वास—ये दो शब्द न होते, तो मानव के पारस्परिक संबंधों का आधार इतना कमजोर होता कि जीवन उसके लिये भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता। विश्वास की अमित शक्ति है। आज हमारे

जीवन में जो एक प्रकार की अशांति पैदा हो गई है, उसका कारण है इसमें श्रद्धा और विश्वास की न्यूनता। दांपत्य जीवन में तो इन दोनो की सबसे अधिक आवश्यकता है। पति-पत्नी के प्रेम-पूर्ण जीवन के मूल में ये दोनो भाव शक्ति प्रदान करते हैं। पत्नी को अपने पति में श्रद्धा रखनी चाहिए। पति जीवन-साथी है, इसलिये उसके प्रति श्रद्धा कम न होनी चाहिए। जिस प्रकार हम अपने माता-पिता, आचार्य और पूज्य गुरुजनों के प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा रखती हैं, उसी प्रकार हमें 'पति' के प्रति भी अपने हृदय में इस पूत भाव को स्थान देना चाहिए।

पत्नी को अपने पति के चरित्र और सदाचार पर संदेह न करना चाहिए। चरित्र-संबंधी निर्मूल संदेह जीवन में विष घोलकर उसे कलुषित बना देते हैं। यदि पति रात्रि को देर से गृह आवें, अथवा किसी स्त्री से स्नेह-पूर्वक वार्तालाप करते हुए दिखाई पड़ें, तो पत्नी को अपने मन में किसी प्रकार की अनिष्ट शंका न करनी चाहिए। संसार में प्रेम का केवल एक ही स्वरूप नहीं है। प्रेम मा, पिता, बहन, भाई और स्त्री से किया जाता है। पति यदि किसी स्त्री के सद्गुण की प्रशंसा करता अथवा उसके प्रति श्रद्धा-भाव से आवर्पित होता है, तो पत्नी को इसमें किसी प्रकार की आशंका न करनी चाहिए। पत्नी को अपना चरित्र इतना उज्ज्वल और निर्मल बनाना चाहिए, जो पति के संदेह से परे हो। प्रत्येक पति और प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि उसकी पत्नी या बहन साध्वी हो। वह अपने प्रिय के अतिरिक्त किसी भी पर-पुरुष का ध्यान न करे। पति अपनी प्रिया के मुख से ऐसे वचन सुनने के लिये लालायित रहता है, जिनसे श्रद्धा का भाव व्यंजित होता हो। पत्नी के मुख से यह सुनकर कि "मैं आपसे विवाह करके बहुत सुखी हूँ। मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। मैं वास्तव में बड़ी सौभाग्यवती हूँ कि मुझे आप-जैसे सुशील, सुयोग्य, विद्वान्, सदाचारी और प्रेमी पति मिले।" पति को अपूर्व आनंद मिलता है। उसे यह आत्म-संतोष प्राप्त होता है कि उसकी पत्नी की उसमें श्रद्धा है।

सतीत्व का आदर्श

प्रिय शांता, सतीत्व और पातिव्रत, इन शब्दों के उच्चारण-मात्र से हमारे सामने सीता, सावित्री, दमयंती आदि सती पतिव्रता

विदुषियों का चित्र उपस्थित हो जाता है। भारत की आर्य नारी पर-पुरुष का स्वप्न तक में ध्यान नहीं करती। वह जिसे एक बार अपना पति स्वीकार कर लेती है, उसे आजन्म पति मानती है। फिर उसके लिये समस्त विश्व में केवल एक ही पुरुष होता है। वह अपने प्रिय पति को सर्वस्व अर्पण कर उसके चरणों में अपना हृदय समर्पित कर देती है। संसार के प्रलोभन, मान सम्मान, सुख-स्वप्न आदि पातिव्रत के पथ से विचलित करके उसको उसके हृदयेश्वर से विलग नहीं कर सकते। वह संसार की महान्-से-महान् आपत्ति को सहकर अपने सतीत्व की रक्षा करती है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास ऐसी सती और पतिव्रता देवियों के समुज्ज्वल, विमल और आदर्श चरित्र-गाथाओं से भरा पड़ा है। आजकल की महिलाएँ चाहे वे और कुछ न जानती हों, परंतु उन्हें सीता-सावित्री का जीवन वृत्त तो ज्ञात ही होगा। भारत के नारी-जीवन में इन सती देवियों ने इतनी श्रद्धा का सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है कि आज इनके चरित्र का वर्णन ग्राम्य गीतों (Eolklove) में बड़ी मधुरता और प्राभावोत्पादक ढंग से किया जाता है।

आज भी भारतीय जीवन और विशेषतः गृह-जीवन में जो शांति और आनंद देख पड़ता है, उसका मूल कारण है स्त्री का सती धर्म। गृह समस्त सामाजिक प्रेरणाओं और सांस्कृतिक उत्कर्ष का मूल स्रोत है। आज योरप और अमेरिका का 'गृह-जीवन' नष्ट हो गया है, इसी कारण योरपियन की संस्कृति का भविष्य भी अंधकार-पूर्ण प्रतीत होने लगा है। भारत में आर्य नारियों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की है। और इसके लिये सबसे बड़ा आत्मत्याग भी भारतीय महिलाओं ने किया है। श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय के शब्दों में, "अपनी सौंदर्य और भावना-संबंधी सूक्ष्म ग्रहण-शक्ति, अपने सृष्टि-रचना-संबंधी प्रकृति-दत्त गुण और जीवन के साथ अपने घनिष्ठ संपर्क के कारण वे ही संस्कृति की मूल-स्रोत और उसके गौरव की ऐतिहासिक रक्षिका होती हैं।"

सतीत्व और पातिव्रत का अर्थ है शरीर, मन और वचन से पति के सुख की कामना करना और पति के अतिरिक्त किसी भी पुरुष से शारीरिक सुख-भोग की इच्छा न करना। स्त्री को अपने मन में किसी पर-पुरुष का काम-भाव से स्मरण तक न करना चाहिए। सच्ची

पतिव्रता स्त्री वही है, जो सर्वदा अपने पति की मंगल-कामना करे, और कभी सांसारिक सुख और प्रलोभनों में पड़कर अपने सतीत्व को न खो बैठे। जो स्त्रियाँ अपमान, समाज के भय, प्रतिकूल परिस्थिति और अभिभावकों या परिजनों के कठोर नियंत्रण या देख-भाल के कारण पतन के मार्ग को नहीं ग्रहण करतीं, वे सच्चे भाव में सती नहीं कहला सकतीं।

यथार्थ में सतीत्व हिंदू नारी का रत्न है, और वह सदियों से अपने इस अनमोल रत्न की रक्षा जिस आत्मत्याग और बलिदान की भावना से करती आई है, वह उसके उच्च आदर्श के अनुकूल ही है। आज भी समाज में सती का स्थान उच्च माना जाता है। समाज में सती पूज्य मानी जाती है। अभी थोड़े दिन पहले मिस नान्सी हबक-नाम्नी एक अमेरिकन महिला भारत में भ्रमण कर स्वदेश लौटी है, उसने भारतीय महिलाओं के संबंध में एक लेख लिखा है, जिसमें भारतीय महिला के पातिव्रत की बड़ी प्रशंसा की है। वह लिखती है—

"भारतीय नारी गृहलक्ष्मी समझी जाती है, और वह पुरुष की दासी नहीं समझी जाती, जैसा मिस मेयो ने लिखा था। हाँ, यह जरूर है कि उसमें यह भावना बराबर बनी रहती है कि पति ही उसका सर्वस्व है। वह अपनी इच्छा और अपने अस्तित्व को अपने पति की इच्छा और अस्तित्व में ही मिला देती है। पर भारतीय नारी को, जिसने निकट से देखा है, उसे इस बात का पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती कि ऐसा करने के लिये वह बाध्य नहीं है, बल्कि भारतीय नारी की दृष्टि में दांपत्य जीवन का जो महत्त्व है, उसे वह समझती है, और अपने आंतरिक प्रेम के कारण ही वह अपने को पति में मिला देती है*।"

भारतीय महिला की विमल दृष्टि में पति श्रद्धेय और पूज्य है। पति उसका एकमात्र इष्टदेव है, इसलिये उसके प्रति श्रद्धा और पूजा का भाव होना स्वाभाविक ही है। सतीत्व एक ऐसा अनमोल हीरा है, जिसकी रक्षा के लिये न केवल स्त्री ही हर समय सन्नद्ध रहती है, अपितु पुरुष भी बड़ी सतर्कता से उसकी रक्षा के लिये तत्पर रहता

* 'विश्वमित्र' (मासिक) कलकत्ता, सितंबर, १९३७, पृष्ठ ११२।

है। पति चाहे जितना पतित और चरित्र-हीन हो, परंतु वह भी यही चाहता है कि उसकी पत्नी पवित्रता की साकार प्रतिमा हो, वह मन, वचन और शरीर से सती हो। यदि पति को पत्नी के सतीत्व पर तनिक भी शंका हो जाती है, तो वह उसे क्षण-भर के लिये भी सहन नहीं कर सकता। व्यभिचारी और चरित्र-हीन पति भी चरित्र पर संदेह के कारण अपनी पत्नी की हत्या करते देखे जाते हैं। पुरुष सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है, परंतु वह अपनी आँखों से अपनी पत्नी का पतन नहीं देख सकता। मैं 'चाँद' पत्रिका पढ़ रही थी। मेरी दृष्टि 'पाठकों की लेखनी से'-शीर्षक स्तंभ पर पड़ी। उसमें किसी एक 'दुःखिनी' ने चाँद-संपादिका के नाम एक पत्र लिखा है। इस पत्र को पढ़कर 'लज्जा को भी लज्जा' आएगी। परंतु इस पत्र में सबसे अधिक विचित्र बात तो यह है कि पुरुष अपनी पत्नी को पतन के मार्ग पर ले जाता है और पत्नी भी उसका अनुसरण करने लगती है! पत्र इस प्रकार है—

"........मैं एक शरीफ़ घराने की लड़की हूँ। मेरे माता-पिता जीवित नहीं हैं। क़रीब आठ वर्ष पहले मेरी शादी चालीस वर्ष के एक तिब्याहे व्यक्ति से हुई थी। मेरे पति का स्वास्थ्य बिलकुल ख़राब है। कितनी ही दवा खाते हैं, परंतु हालत नहीं बदलती। इस हालत में भी मैं बराबर उनकी सेवा में तत्पर रही। पर मेरे पति को न-जाने क्या सूझा कि उन्होंने ख़ुद ही मुझे पतन की ओर ढकेल दिया। मेरे घर मेरे पति के कुछ रिश्तेदार आते थे, उनसे खुलकर मिलने की मुझे प्रेरणा की। मेरे पति मेरे द्वारा धन-उपार्जन भी करना चाहते थे। इस विचार से वे मुझे अपने एक नवयुवक मित्र के यहाँ रेडियो सुनाने के बहाने ले जाने लगे। मेरे पति ने उनसे दो वर्ष में दो-तीन हज़ार रुपए भी ले लिए। इस संबंध से मेरे दो संतानें भी हुईं—एक लड़की, दूसरा लड़का। ये दोनो संतानें मेरे पाप की कमाई हैं। यह संबंध एकाएक टूट गया। उस मित्र की पत्नी तथा सास को सब बातें मालूम हो गईं। उन्होंने मेरा वहाँ आना-जाना बंद करा दिया, और मेरे कुछ रिश्तेदारों को भी मेरी तमाम करतूतें बतला दीं। इसके बाद मेरे पति ने मेरा परिचय अपने एक धनी रिश्तेदार से, जो विद्वान् भी हैं, कराया, और उनसे भी रुपया लेने की कोशिश की। यह संबंध अभी तक जारी है। वे बराबर मेरे घर आते

हैं, पर उनसे रुपया न मिलने की वजह से मेरे पति मुझसे बहुत नाराज हैं। यह सब मुझे पति के दबाव से करना पड़ता है। मुझे इन घृणित कामों से घृणा है। अगर पति का कहना न मानूँ, तो मैं कहाँ रहूँ *?"

इसमें संदेह नहीं कि यह दुरवस्था आजकल की दोष-पूर्ण विवाह-प्रणाली का फल है। पुरुष के नैतिक पतन की इससे बढ़कर और क्या सीमा हो सकती है? जो पुरुष अपनी पतिव्रता पत्नी को पतन के मार्ग पर अरूढ़ कर उसके सतीत्व को नष्ट करावे, वह पुरुष नहीं, पिशाच है, राक्षस है, और मानव-नाम को लज्जित करनेवाला निरा पशु है। पति पतन के मार्ग पर आरूढ़ हो जाय, तो उससे इतनी हानि नहीं, जितनी कि पत्नी के पतित हो जाने में है। पत्नी गृह की स्वामिनी ही नहीं, वह गृह द्वारा समाज की निर्मात्री है, इसलिये पत्नी का पतन समाज को पतन की ओर ले जानेवाला है। उपर्युक्त पत्र में वर्णित घटनाएँ यदि सच हैं, तो वे वास्तव में नितांत घृणास्पद, लज्जा-जनक और स्त्री-जाति के लिये कलंक हैं। सतीत्व तो स्त्री का वह उच्चादर्श है, जिसके लिये उसे बड़े-से-बड़ा त्याग और बलिदान करके भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। सतीत्व नारी का सर्वश्रेष्ठ गुण है, वह उसकी शोभा और उसके शील-सौंदर्य का आदि स्रोत है। फिर इसे पति-पद पर आसीन 'पिशाच' की इच्छामात्र से त्याग देना तो नारीत्व का अपमान करना है। स्त्री को विकट परिस्थितियों में भी अपने प्राण देकर सतीत्व की रक्षा करनी चाहिए। पुरुष के ऐसे पतन को देख हृदय में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित होने लगती है। पुरुष-जाति के प्रति एक क्षण के लिये श्रद्धा का भाव नष्ट हो जाता है। परंतु नारी के पतन को देखकर तो हृदय टूक-टूक हो जाता है। गृह, समाज और संस्कृति की संरक्षिका के पतित हो जाने के बाद इस विश्व में रह ही क्या जाता है।

पुरुषों की दूषित मनोवृत्ति

आजकल पुरुषों की मनोवृत्ति इतनी दूषित हो गई है कि स्त्री को अपने सतीत्व की रक्षा करना बड़ा कठिन होता जा रहा है। स्टेशन,

* 'चाँद' (मासिक पत्रिका) इलाहाबाद, सितंबर, १९३७, पृष्ठ ५१७

बाजार, सिनेमा, सभा, सम्मेलन, मेला आदि ऐसे स्थान हैं, जहाँ किसी भी रूपवती और सुंदर स्त्री का दूषित और पतित पुरुषों की कुदृष्टि से बचना संभव नहीं। असभ्य और अशिक्षित समुदाय के पुरुषों की ही मनोवृत्ति ऐसी हीन नहीं है, किंतु शिक्षित और सभ्य समुदाय के पुरुषों में भी इस दूषित मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। उन विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में जाकर पुरुषों की मनोवृत्ति का अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिलेगा, जहाँ युवक और युवतियाँ सह-शिक्षा प्राप्त करते हैं। कॉलेजों और युनिवर्सिटियों में युवक और युवतियों को किस प्रकार दुर्भावना की दृष्टि से देखते हैं, यह लेखनी से लिखा नहीं जा सकता। वे उनके रूप-माधुर्य को देखकर ऐसे मुग्ध और विचलित हो जाते हैं, जैसे भ्रमर गुलाब के सुंदर पुष्प को देखकर, और फिर उस युवती के चारो ओर भौंरे की भाँति मँडराने लगते हैं। समाज में ऐसी चरित्र-हीन और दुराचारिणी स्त्रियाँ भी हैं, जो जान-बूझकर, अपना रूप आकर्षक एवं मोहक बनाकर, फैशन और शृंगार से सुसज्जित हो ऐसे ढंग से बाजारों और सड़कों से निकलती हैं कि पुरुषों का ध्यान आकर्षित हो जाय। और, जब पुरुष उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगते हैं, तब वे उनकी ओर कटाक्ष करती हैं, फँस जाती हैं और उनके स्पर्श-सुख के लिये व्याकुल हो जाती हैं।

अतः ऐसे दूषित वातावरण में अपने चरित्र की रक्षा करना एक बड़ी विकट समस्या है। स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने सतीत्व की रक्षा में सदैव सतर्क रहें, और ऐसे अवसरों पर लज्जा या संकोच के कारण मौन धारण न करें। यदि कोई पतित पुरुष सतीत्व पर आक्रमण करने की दुर्भावना से कोई दुष्कृत्य करे, तो स्त्री को चाहिए कि तुरत ही रण-चंडिका का भयंकर रूप धारण कर ले, और ऐसे दुष्ट दुराचारी पुरुष को उसकी दुश्चेष्टाओं का मजा चखा दे। ऐसे भी माता-पिता हैं, जो अपनी पुत्रियों की चरित्र-भ्रष्टता और व्यभिचार-लीला को जानते हैं; परंतु इस पर परदा डाल देते हैं। परंतु यह वृत्ति दुराचार की पोषक है। स्त्रियों को यह बात भली भाँति हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि सतीत्व माता-पिता, भाई-बहन और पति से भी बढ़कर है। सतीत्व उसके प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् है। इसलिये अपने सतीत्व की रक्षा के लिये प्राणों तक का उत्सर्ग कर देना चाहिए।

आजकल समाज में पुरुषों की इस दूषित मनोवृत्ति के फलस्वरूप पापाचार अधिक बढ़ता जा रहा है। स्त्री-अपहरण, व्यभिचार, दुराचार और वैवाहिक अपराध दिन दूने बढ़ते जा रहे हैं। युवक सहपाठी अपनी सहपाठिनी कुमारी, शिक्षक अपनी शिष्या तक से भोग-विलास करना पाप नहीं समझते, तब विद्यालयों में सदाचार की शिक्षा का मूल्य कैसे हो सकता है? आजकल के 'सभ्य' गुंडों ने तो और भी अंधेर मचा रक्खा है। वे कैसे गुप्त, रहस्य-पूर्ण और युक्ति-पूर्ण उपायों से कुल बालाओं को पतित बनाते हैं— उन्हें चरित्र-भ्रष्ट करते हैं, यह जानना और समझना भोली स्त्रियों के ज्ञान से परे है। समाज में ऐसे अनेक दुष्ट और पापी हैं, जो प्रकट में स्त्री को 'बहनजी' कहते हैं, और गुप्तरूप से उनका सतीत्व-हरण करने का उपाय करते हैं। ये सभ्य गुंडे मित्र, भाई और हितैषी बनकर स्त्रियों को पतित करते हैं। दुःखी और दांपत्य जीवन से असंतुष्ट स्त्रियों के साथ सहानुभूति प्रकट कर, उनकी सहायता कर अथवा अन्य किसी सफल उपाय द्वारा उनसे परिचय बढ़ाकर अवसर मिलते ही उन्हें भ्रष्ट कर देते हैं। इसलिये स्त्रियों को ऐसे 'मित्रों' से सर्वदा अलग रहना चाहिए। ऐसे हितैषियों के सामने कभी किसी चीज के लिये याचना न करनी चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों को अपनी पवित्रता की रक्षा के लिये असीम साहस, उत्साह और निर्भयता की आवश्यकता है।

मैं एक ऐसे परिवार को जानती हूँ, जिस पर एक दुष्ट और पापी युवक ने अपना ऐसा आतंक और प्रभुत्व जमा लिया है कि वह उस परिवार का स्वामी बन बैठा है। इस परिवार में एक शिक्षित युवक है। वह उपर्युक्त दुष्ट एवं व्यभिचारी युवक का मित्र है। इस शिक्षित युवक के दो-तीन छोटे भाई भी हैं। इन सब भाइयों की स्त्रियाँ हैं नवयुवतियाँ; माता-पिता भी मौजूद हैं। पहले-पहल दुष्ट मित्र ने इस परिवार से परिचय प्राप्त किया, क्रियात्मक सहानुभूति प्रदर्शित की! कुछ ऐसे कार्य और परिवार की सहायता की, जिससे परिवार के लोगों में उसके प्रति आदर और श्रद्धा के भाव पैदा हो गए। बस, वह अपने कार्य में सफल हो गया। अब उसने परिवार की समस्त युवती बधुओं से अपना अनुचित संबंध स्थापित कर लिया। परिवार के लोग और वह शिक्षित युवक अपने दुष्ट मित्र

की ऐसी नीच करतूतों को जानता है; पर वह समाज अथवा दुष्ट मित्र के भय से इसे सहन कर रहा है।

मेरे पड़ोस में एक पंजाबी लड़की रहती है। उसने 'हिंदी-मिडिल' तक शिक्षा प्राप्त की है। उसके मकान के निकट ही एक युवक रहता है। वह युवक पंजाबी-परिवार में आता-जाता था। उसके लिये कोई रोक-टोक न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी घनिष्ठता पंजाबी युवती से बढ़ गई। युवती की आयु सत्रह-अठारह वर्ष है। इसका परिणाम यह निकला कि वह जिस कुमारी को किसी दिन 'बहनजी' कहता था, उसी के साथ भोग-विलास में लिप्त हो गया। ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

वास्तव में सतीत्व की रक्षा का प्रश्न बहुत ही विकट बन गया है। इसके लिये असीम साहस, उत्साह, सदाचार की शिक्षा तथा धार्मिक वातावरण अतीव आवश्यक है। प्यारी बहन, मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि यदि स्त्री का हृदय निर्मल, पवित्र और वासना-हीन है, तो उसे कोई दुष्ट पतित नहीं कर सकता। स्त्री पतन के मार्ग पर इतना जल्दी चल देती है कि उससे दुष्टों को और भी साहस मिलता है!

सतीत्व-रक्षा के उपाय

प्रिय बहन, सतीत्व-रक्षा स्त्री के सामने सबसे बड़ी समस्या है। जैसी बड़ी यह समस्या है, वैसा ही कठिन और दुरूह इसका उपाय भी।

"इसलिये नारी-धर्म का—सतीत्व का सबसे बड़ा रक्षक तो भगवान् के अंदर अगाध विश्वास और अपने हृदय का तेज एवं साहस है। दूसरा उपाय पति के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं प्रेम है। तीसरी बात अपना पाप-रहित हृदय और आत्म-त्याग का भाव एवं अभ्यास है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य को बहुत समझ-बूझकर और अपनी जिम्मेदारियों का खयाल करके अपने मित्रों का चुनाव करना चाहिए। ज्यादा आदमियों से घनिष्ठता बढ़ाना कभी ठीक और हितकर नहीं होता। हमें जीवन में दो-एक ही सच्चे मित्र, बंधु या सखी बहन चुनने का

प्रयत्न करना चाहिए। एक भी भाई या बहन ऐसी मिल जाय, जो ठीक-ठीक समझकर आजीवन अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर सके, तो समझना चाहिए कि हमें स्वर्ग मिल गया। क्योंकि सच्चे मित्र से बढ़कर दुनिया में दुर्लभ वस्तु दूसरी नहीं है*।"

यदि एकांत में किसी पतिपरायणा स्त्री पर कुछ गुंडे अकेली जानकर आक्रमण करें और वह स्त्री उनसे अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये शक्ति-भर प्रयत्न करे, हरएक उपाय से अपनी रक्षा करे, परंतु फिर भी उसकी इच्छा के विरुद्ध दुष्ट उसका सतीत्व हरण करें, तो मैं समझती हूँ, वह बाला पूर्ण निर्दोष होगी। उसके मन में विचार- भाव पैदा नहीं हुआ और उसका हृदय स्फटिक - मणि की भाँति विमल है, तब उसके सती-धर्म को कैसे कलंक लग सकता है। अतः ऐसी स्त्री को जो पति त्याग देते हैं, वे बड़ा अपराध करते हैं—बड़ा अन्याय, अधर्म करते हैं।

सेवामय जीवन

आजकल की शिक्षिता बहनों में सेवा का भाव कम होता जा रहा है। वे समानता का दावा करती और यह चाहती हैं कि वे गृह में उतना ही कार्य करें, जितना उनके पति करते हैं, और जब दो-चार नौकर-चाकर हैं, तब स्वयं काम करना तो बड़ा अपमान-जनक है। इस प्रकार के दुर्विचार आजकल की 'शिक्षिता' बहनों में बढ़ते जा रहे हैं। परंतु ये विचार बड़े हानिप्रद हैं, और इनसे गृह का सब सुख-वैभव नष्ट हो जाने की संभावना है। स्त्री का जीवन सेवामय होना चाहिए। निज पति और परिजनों की सेवा करना उसका कर्तव्य है। जो स्त्रियाँ अपने पति और परिजनों की सेवा नहीं करतीं, वे सर्वदा दुखी रहती हैं और गृह के सभी व्यक्ति उनसे असंतुष्ट रहते हैं। गृह में जो कार्य किए जायँ, वे प्रसन्न मन से और शांति-पूर्वक किए जाने चाहिए। काम काज करने में किसी प्रकार का क्षोभ मन में उत्पन्न न होना चाहिए।

---

* देखिए 'भाई के पत्र'। लेखक, श्रीरामनाथलाल 'सुमन'; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, देहली; चौथा संस्करण १९३३, पृष्ठ १२२

जो स्त्रियाँ सारे दिन गृह के काम-काज में संलग्न रहती हैं, वे दूसरों की ही सेवा नहीं करतीं, प्रत्युत एक प्रकार से अपनी ही सेवा करती हैं। काम-काज करने से शरीर में स्फूर्ति और शक्ति पैदा होती है, आलस्य दूर हो जाता है। फलत. स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। गृह के लोग भी प्रसन्न रहते हैं, और पति भी प्रसन्न रहता है। इससे परस्पर संबंध अच्छे रहते हैं, और प्रेम की वृद्धि होती है।

पत्नी प्रेमिका के रूप में—दांपत्य जीवन में प्रेम की वृद्धि के लिये पति-पत्नी को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। पति केवल यही नहीं चाहता कि पत्नी एक सती स्त्री की भाँति बड़े नियम-संयम से रहे, और गृह के सब काम-काज सेवा-भाव से करती रहे। परंतु वह पत्नी को सदैव प्रेमिका के रूप में देखना चाहता है। आजकल दांपत्य जीवन में जो विषमता और असंतोष दिखाई पड़ता है, उसका एक प्रमुख कारण यह है कि पति-पत्नी के बीच वैसा प्रेमी-प्रेमिका-जैसा प्रेम-पूर्ण व्यवहार नहीं होता, जैसा विवाहोपरांत कुछ वर्षों तक रहता है। पति-पत्नी का आचरण, विशुद्ध प्रेमी-प्रेमिका की भाँति, सदैव रहना चाहिए। जिस स्त्री के एक-दो संतानें हो जाती हैं, वह इस बात को बिलकुल भूल जाती है कि जगत् में 'प्रेम' भी एक कला है। अँगरेज़ी कवि बायरन ने कहा है—"पुरुष का प्रेम उसके जीवन से अलग है, पर स्त्री का जीवन ही प्रेममय है*।" स्त्री प्रेममय है। वह प्रेम की साकार मूर्ति है। पुरुष बाह्य जगत् में विचरण करता है। वह संसार के न जाने किन-किन व्यापारों और कार्यों में लिप्त रहता है; उसका मन जीवन की अनेक घटनाओं में उलझा रहता है, और वह निशि-दिन सांसारिक उलझनों में से निकलने का प्रयास करता रहता है। इस कारण उसके लिये यह संभव नहीं कि वह एकांत मन से प्रेम की वैसी साधना कर सके, जैसी कि एक गृह-देवी कर सकती है। पतिव्रता, सती और पति में विशुद्ध भाव से अनुरक्त पत्नी के लिये संसार में बड़े-से-बड़े कष्ट भी सुख और आनंद में बदल जाते हैं। वह कष्टों को बड़ी आसानी से प्रेम-पूर्वक सहन कर लेती है। क्यों? केवल-मात्र अपने पति के प्रेम के कारण। एक पंजाबी ग्राम-गीत में हीर

* wan's isof man's lite a tning apart, It is woman's whole existence.

कहती है—"मेरे हाथों में काँटे हैं, पैरों में काँटे हैं और गले में काँटों की मालाएँ हैं। मेरा सिरहाना भी काँटों का है और पैरों के नीचे भी काँटे हैं। दाएँ-बाएँ काँटे-ही-काँटे हैं। मैंने काँटे की सेज बिछाई है। आह! मेरे हृदय में काँटे चुभ रहे हैं। यदि मुझे मेरा राँझा मिल जाय, तो वे सब काँटे मेरे लिये फूल बन जायँ ❀।"

प्रेम में त्याग और भक्ति की भावना होनी चाहिए। स्त्री को प्रेम केवल इस भावना से न करना चाहिए कि पति उससे प्रसन्न होकर आभूषण, सुंदर वस्त्र, सुख-सामग्री के उपहार-रूप में प्रेम का प्रतिदान देगा। यह भावना दुःख-मूलक है। जिस स्त्री के हृदय में अपने पति के लिये सच्चा प्रेम है, उसमें अपने पति के लिये बड़े-से-बड़ा त्याग करने की अदम्य शक्ति स्वतः पैदा हो जाती है।

"इसलिये जिस स्त्री के हृदय में सच्चा प्रेम होता है, वह ससुराल के धन-धाम, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर, रुपए-पैसे को नहीं देखती। वह केवल पति पाकर संतुष्ट रहती है। वे स्त्रियाँ बड़ी क्षुद्र और सदा दुःखी रहती हैं, जो अपनी सुविधाओं के लिये, कभी गहने के लिये, कभी कपड़े के लिये, पति से झगड़ा मोल लेकर अपने और उसके हृदय के बीच एक दीवार खड़ी कर देती हैं। विवाहित जीवन में पति-पत्नी को एक दूसरे की बुराई-भलाई, कमी ज्यादती को अपनी ही बुराई-भलाई समझकर एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए, धीरज बँधाना और सांत्वना देनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह खड़ा कर देने से सदा दोनों एक दूसरे से दूर होते जाते हैं और अंत में पछताना ही पड़ता है।

"इसलिये तुम अपने हृदय को नदी के समान सदा प्रेम के

❀ हीर और राँझा पंजाब के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रेमी प्रेमिका हैं। उनके संबंध में अनेकों गीत प्रचलित हैं। हीर राँझा को अपना ईश्वर-प्रदत्त पति मानती थी। पर उसके माता पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह 'सैदा'-नामक व्यक्ति के साथ कर दिया। हीर ने 'सैदा' को अपना हृदय देना स्वीकार नहीं किया। जीवन की आख़िरी घड़ी तक वह राँझा का नाम जपती थी। गाथा बतलाती है कि हीर के माता पिता ने अपनी बेटी को ज़हर दे दिया था। आज भी 'झंग' में उसकी समाधि मौजूद है। देखिए 'विश्वमित्र', मई, १४।

जल से छलकता रक्खो। प्रेम की इस पवित्र धारा में घर के आस-पास की सारी मलिनता, सारी बुराई बह जायगी, और तुम सदा पवित्र एवं सुखी रहोगी *।"

पत्नी मित्र और सखा के रूप में

पति यह चाहता है कि पत्नी उससे प्रेम करे, उसकी सेवा करे, और उसके कार्यों में सहायता एवं सहयोग दे। पति जिस कार्य या व्यवसाय को करे, उसमें यथासंभव पत्नी को सहायता देनी चाहिए। यदि पति लेखक है, तो स्त्री में भी लेखक-कार्य के प्रति रुचि होनी चाहिए। यदि पति संपादक है, तो स्त्री में भी कुछ ऐसी पत्रकारी रुचि का होना श्रेयस्कर है। यदि पति व्यापारी है, तो स्त्री को पति के कार्य में उचित परामर्श और सलाह देनी चाहिए। यदि पति शिक्षक है, तो स्त्री को भी शिक्षिका बनने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि पति देश-भक्त है, खादी-प्रेमी है, प्रगति-शील राजनीतिक विचार-धारा का समर्थक है, तो स्त्री में देश-प्रेम और उसके विचारों से सहानुभूति होनी चाहिए। तुम यह तो भली भाँति जानती हो कि मैत्री या सखा-भाव समान बुद्धि-विचार और पद-मर्यादावाले व्यक्तियों में ही सुखदायक और श्रेष्ठ होता है। इसलिये यदि तुम अपने पति की मित्र बनना चाहतीहो, तो तुममें भी वैसे ही गुण, रुचि और विचार होने चाहिए। यदि तुममें वैसे गुण, विचार या रुचि न हों, तो उन्हें पैदा करने की चेष्टा करनी चाहिए।

एक सच्चे और हितैषी मित्र की भाँति स्त्री को पति के कार्य में हाथ बँटाना चाहिए। हमारे साहित्य में स्त्री को 'सहधर्मिणी' कहा गया है। यह शब्द सार्थक है। इसे कोरा भाव-शून्य शब्द न समझ लेना चाहिए। पति जो धर्म या अधर्म-युक्त कार्य करता है, उसमें उसकी स्त्री संगिनी है, सहयोगिनी है, इसीलिये वह 'सह-धर्मिणी' कहलाती है।

स्त्री पुरुष की जननी है।

स्त्री पुरुष की जननी है, वह पुरुष को पैदा करती है। पुरुष चाहे जिस अवस्था में हो—शिशु या वयस्क—वह स्त्री से मातृवत् प्रेम

* देखिए 'भाई के पत्र'। लेखक, श्रीरामनाथलाल 'सुमन'; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, देहली; संस्करण तृतीय, १९३३ ई०, पृष्ठ १३४-१३५।

की आकांक्षा करता है। मा अपने शिशु को बड़े लाड़-प्यार से रखती है, उसको किसी प्रकार का कष्ट होने पर स्वयं दुःखित होती है। उसके थोड़े-से कष्ट से उसे रात-रात-भर जागकर बितानी पड़ती है। वही शिशु जब युवक के रूप में विकसित हो जाता है, तब भी मा का हृदय उसके लिये वैसा ही बना रहता है। जब कभी मेरी मा और मेरे बीच किसी प्रसंग को लेकर अनबन हो जाती थी, तो मैं चुप हो कमरे के एक कोने में बैठ जाती। घंटों ऐसे ही बैठी रहती। मेरी मा भी मुझसे खूब नाराजगी प्रकट करती परंतु जब मैं भोजन का समय हो जाने पर भी भोजन न करती, तो मेरी मा को बड़ी व्याकुलता होने लगती। वह मुझे मनाती और प्रसन्न करने का हर तरह उपाय करती। जब तक मैं प्रसन्न न हो जाती, तब तक उसके हृदय की कली न खिलती। वह भी उदासीन-सी रहती।

पुरुष बड़ा हो जाने पर—विवाहित हो जाने पर—अपनी पत्नी से भी ऐसे ही आचरण की आशा करता है। यदि पति किसी बात से नाराज हो जायँ, तो उन्हें वैसे ही प्रेम-पूर्वक मनाना चाहिए, जैसे मा अपने रूठे हुए बालक को मनाती है। पुरुष है भी तो विकसित बालक। पत्नी को पति की देख-भाल मा की भाँति रखनी चाहिए। जब पुरुष को कोई कष्ट होता है, उस पर कोई विपत्ति आती है, तो वह चाहे जैसा वीर, साहसी और पराक्रमी क्यों न हो, बार-बार मा का स्मरण करता है। ऐसा वह क्यों करता है? पुरुष के संस्कार वास्तव में कुछ ऐसे बन जाते हैं कि वह अपनी मा के प्रेम-पूर्ण प्रभावों को मिटा नहीं सकता। मा उसे कष्ट और विपत्ति में जैसी सहायता देती थी, और जब वह 'मा-मा' कहकर अपनी वेदना व्यक्त करता था, तब मा तुरंत उसे अपनी गोद में लेकर हृदय से लगा लेती थी, वैसे ही वह इस वय में उसी प्रेम का दृश्य देखना चाहता है। पुरुष चाहे जितना बड़ा क्यों न हो जाय, वह स्त्री के सामने तो शिशु ही रहेगा।

आज इतना ही। अगले पत्र में मैं दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के लिये रहस्य-पूर्ण बातें लिखूँगी।

तुम्हारी
स्नेहमयी
इंदिरा

सुखी दांपत्य जीवन का रहस्य

शांति-निवास, आगरा
२६ एप्रिल, १९३७

दुलारी बहन शांता,

मैंने पिछले पत्र में 'दांपत्य प्रेम की साधना' के संबंध में तुम्हें जो कुछ बतलाया, उसे तुमने पसंद किया, यह जानकर मुझे संतोष है। परंतु अभी तुम्हें उससे पूरी तुष्टि नहीं हुई। तुम ऐसे उपाय जानने के लिये अत्यंत उत्सुक प्रतीत होती हो, जिनके प्रयोग से पति सदैव प्रसन्न रहें। आज मैं इस पत्र में कुछ ऐसे उपाय बतलाऊँगी, जिनसे तुम अपने पति को प्रसन्न रख सकोगी।

सौंदर्य की देवी

पति स्त्री को सदैव सुंदर रूप में देखना चाहता है। मैंने सुंदरता प्राप्त करने के उपाय तो बतला दिए हैं, परंतु यहाँ केवल यही बतलाना चाहती हूँ कि तुम जब पति के समीप जाओ, तब अपना रूप-माधुर्य इतना आकर्षक बनाकर जाओ कि तुम्हारे दर्शन करते ही उनके मुख से तुम्हारे सौंदर्य की प्रशंसा में अनायास शब्द निकल पड़ें। स्त्रियाँ जब पति के पास जाती हैं, तब वे सुंदरता की ओर अधिक ध्यान नहीं देतीं। वे शायद यह समझती हैं कि सुंदरता पति को दिखलाने के लिये नहीं है। इसीलिये जब वे उपवन (बाग-बगीचा), सभा-सम्मेलन, बाज़ार, सिनेमा-थिएटर आदि में जाती हैं, तब सब प्रकार से सुसज्जित हो, आकर्षक, सुंदर और नवीन वेश-भूषा धारण करके जाती हैं, परंतु जब पति के समीप उपस्थित होती हैं, तब साधारण रूप में। इससे पति की सौंदर्य-भावना तृप्त नहीं होती, [illegible] सौंदर्य का प्रेमी है। पति भी अपनी प्रिया को सौंदर्य-देवी के रूप में देखना चाहता है। इसलिये पत्नी को चाहिए

कि वह अपने शारीरिक सौंदर्य को अधिक-से-अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न करे। अपने वस्त्रालंकार इस प्रकार धारण करे कि वे शरीर की सुंदरता को बढ़ावें, और पति के मनोऽनुकूल हों। सुंदर-से-सुंदर और अति उज्ज्वल वस्त्र धारण कर पति के निकट उपस्थित होना चाहिए। जिन वस्त्रों को धारण कर काम-काज किया जाय, उन्हें बदल लेना चाहिए, क्योंकि वे काम-काज करने से मलिन हो जाते हैं। शरीर की बनावट की सुंदरता के साथ-साथ सुकुमारता और चाल में एक मोहक 'अदा' होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि पत्नी की सुंदरता का पति के मन, हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़े कि वह उसके सामने किसी अन्य स्त्री के सौंदर्य-दर्शन की लालसा न करे।

अमृत-सी बोली

स्त्री में चाहे जितना रूप, माधुर्य और सुंदरता क्यों न हो, यदि उसकी वाणी में माधुर्य नहीं, तो उसका सौंदर्य पति के लिये आकर्षक नहीं हो सकता। मधुर भाषण, प्रिय भाषण और नम्रता के अभाव से नारी के बड़े-से-बड़े सद्गुण भी दुर्गुणों में बदले हुए प्रतीत होते हैं। पत्नी को पति से ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति से, जिसके संपर्क में वह आवे, मधुर भाषा में, अमृत-सी बोली में भाषण करना चाहिए। मधुर भाषण सबसे बड़ा वशीकरण-मंत्र है। जो स्त्रियाँ अपने पति एवं परिजनों से कटु और कठोर वचन बोलती हैं, वे अपने सुख और आनंद को नष्ट कर देती हैं। पुरुष कटु वचनों को सहन नहीं कर सकता। कभी भूलकर भी व्यंग्य-पूर्ण भाषा का प्रयोग न करना चाहिए। व्यंग्य-बाणों से विद्ध हृदय की वेदना पुरुष को, क्रोधावेश में, भयानक-से-भयानक कार्य करने को बाध्य कर देती है। भाषा सरल, शुद्ध, रस पूर्ण और हृदय के भावों को व्यक्त करने-वाली होनी चाहिए। पति के सम्मुख सदैव निश्छल-भाव से अपने हृदय के उद्गार प्रकट करने चाहिए। भाव गोपन की चेष्टा करना बड़ा अनिष्ट-मूलक है। ऐसा करने से पति के मन में विविध प्रकार की शंकाएँ घर कर लेती हैं, और पत्नी की ओर से श्रद्धा तथा विश्वास कम होने लगता है।

संभाषण करते समय पत्नी को यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि

होना चाहिए। वैसे यह कहावत है कि गाना और रोना प्रत्येक स्त्री जानती है; परंतु संगीत एक ललित कला है। उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये अभ्यास और साधना की आवश्यकता है। संगीत पति-पत्नी के मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन है। अनेकों पति संगीत का आनंद लेने के लिये वेश्या-गृह में पग रखते और धीरे-धीरे पतन के मार्ग पर चले जाते हैं, अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात करके वेश्या को अपना स्वास्थ्य, शरीर एवं सर्वस्व अर्पित कर देते हैं।

आज से कुछ वर्ष पूर्व संगीत एक घृणा-जनक और हेय 'कला' मानी जाती थी; क्योंकि उसकी पोषिका और रक्षिका वारांगनाएँ थीं। परंतु अब समय बदल गया है। संगीत ने सभ्य और शिक्षित समाज में आदर का स्थान प्राप्त कर लिया है। बालिका-विद्यालयों में कन्याओं को संगीत की शिक्षा दी जाती है। आजकल प्रमुख नगरों में 'संगीत-परिषदें' और 'संगीत-विद्यालय' स्थापित हैं, जिनके द्वारा जनता में उसका प्रचार किया जा रहा है। प्रतिवर्ष 'संगीत-सम्मेलनों' और 'संगीत-प्रतियोगिताओं' का आयोजन 'विश्वविद्यालयों', कॉलेजों, स्कूलों और संगीत-प्रेमियों द्वारा किया जाता है, जिसमें भारत के प्रसिद्ध संगीताचार्य और कला-विशारद अपने मधुर संगीत सुनाकर अमृत की वर्षा करते हैं। 'संगीत-प्रतियोगिताओं' में बालिकाएँ और लड़कियाँ भाग लेती हैं। इस प्रकार संगीत मनोरंजन का एक प्रमुख साधन बनता जा रहा है। प्रयाग के 'शिक्षा-बोर्ड' ने संगीत को अपने पाठ्य-क्रम में लड़कियों के निमित्त 'स्वीकृत विषय' घोषित कर दिया है।

हृदय की विशालता

हृदय की उदारता स्त्री का स्वाभाविक गुण है। परंतु कुसंस्कारों के प्रभाव से वह इस अमूल्य गुण को खो बैठती है। वह अपने हृदय को अत्यंत संकीर्ण बना लेती है। ईर्ष्या-द्वेष के कारण स्त्रियाँ संकुचित हृदय की बन जाती हैं। इसलिये इस बात का सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिए कि जिससे नारी का यह प्रकृति-दत्त गुण [illegible] ने पावे। इसके लिये सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि स्त्री

अपने समय का अच्छा उपयोग करे। वह अपने समय को व्यर्थ की बातों में बरबाद न करे।

जब सखी-सहेलियाँ आपस में मिलती-जुलती हैं, तब वे किसी-न-किसी पुरुष या स्त्री के चरित्र के संबंध में बुराई करती हैं। "उसका पति बड़ा निर्दयी है।" "उसकी स्त्री बद-चलन मालूम होती है।" यह तो अपनी घरवाली का पूरा गुलाम है।" "अमुक पुरुष चरित्र-हीन है!" इत्यादि। इन बातों से हृदय पर बुरा असर पड़ता है। स्त्रियों में यह विशेषता देखी गई है कि वे किसी पुरुष या स्त्री की चरित्र-हीनता की रिपोर्ट एक दूसरी को बड़ी गुप्त रीति से दे देती हैं। चाहे यह रिपोर्ट ग़लत हो या सही; पर इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की बातों से मनोवृत्ति बुरी बन जाती है। किसी पुरुष या स्त्री की बुराई करना अथवा चुग़ली करना बड़ा दूषण है। स्त्रियाँ इस अवगुण की शिकारी हो जाती हैं। स्त्रियों को चाहिए कि वे इन दुर्गुणों से बचने का सदा प्रयत्न करें। यदि कोई पुरुष-स्त्री उन्नति करते हैं, तो उन्हें देखकर मन में प्रसन्न होना चाहिए। किसी के पतन और गिरावट से हृदय में घृणा उत्पन्न होनी चाहिए। पतित व्यक्ति की बुराई करने से उसका सुधार नहीं हो सकता। उसका सुधार तो उसकी बुराइयाँ दूर करने से हो सकेगा।

सहनशीलता

सहनशीलता नारी-जाति का एक अमूल्य रत्न है। यदि भारतीय नारी में यह गुण मौजूद न होता, तो गृह-जीवन कब का नष्ट हो गया होता। आजकल स्त्रियों में यह गुण कम पाया जाता है। इस गुण के अभाव या कमी के कारण 'पारिवारिक जीवन' कलह-पूर्ण बनता जा रहा है। बात-बात में स्त्रियों को यह कहते सुना जाता है—"कोई हम धौंस में रहती हैं, जो सुनें, बहुत सुन चुकी हैं, अब नहीं सुना जाता।" इससे यह प्रतीत होता है कि स्त्रियों की सहनशीलता की शक्ति कम होती जा रही है। गृह-जीवन में पति-पत्नी, पुत्र, पिता-माता आदि सभी को एक दूसरे के विचारों एवं भावों की रक्षा करते हुए रहना पड़ता है। यदि कोई एक व्यक्ति स्वेच्छाचारी बनकर अपने शक्ति बल से किसी बात को सबसे मनवाना चाहे, तो यह संभव नहीं। ऐसी प्रवृत्ति असंतोष-जनक है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि सहनशीलता का गुण बड़े

अभ्यास और प्रयत्न से ही प्राप्त होता है। आज हमारे देश में महात्मा गांधीजी का ऐसा आदर-सम्मान और देशव्यापी प्रभाव क्यों है? उसका एक प्रमुख कारण है, उनका संयमी जीवन और सहनशीलता का अपूर्व आदर्श! उन्होंने अपने दांपत्य जीवन और सार्वजनिक जीवन के अनेक अवसरों में अहिंसा-पूर्ण सहनशीलता का जैसा स्पष्ट परिचय दिया है, वैसा बहुत कम महापुरुषों में मिलता है।

यदि तुम आरम्भ में कठिनाई सहकर, और अपने मन पर क़ाबू रखकर सहनशीलता का अमूल्य रत्न प्राप्त कर लोगी, तो अपने ऊपर उसके अपूर्व प्रभाव का अनुभव करोगी।

"दूसरों की निंदा और गालियों को सह लेना अपने हृदय में स्वर्ग की सृष्टि कर लेने के समान है। दूसरे क्या कहते हैं, यह देखने एवं दुखी और चिंतित रहने की जगह सदा यह देखो, यह ध्यान रक्खो कि तुम ईश्वर के सामने निर्दोष हो या नहीं। यदि तुम अपने मन में निर्दोष और पवित्र हो, तो किसी के उलाहने, किसी की निंदा और किसी की बुराई से तुम्हें दुखी या चिंतित न होना चाहिए। हाँ, निंदा करनेवाले आदमी का बुरा नहीं सोचना चाहिए *।"

अंत में मैं पुनः यह लिखती हूँ कि स्त्री के लिये सफल दांपत्य जीवन के लिये सहानुभूति परम आवश्यक है। पति में यदि कोई दुर्गुण हो, तो पत्नी को चाहिए कि वह बड़े यत्न से प्रेम-पूर्वक उसके दुर्गुण को दूर करने का प्रयत्न करे। उसे पति से घृणा न करनी चाहिए। यदि पति आवेश में कोई कटु बात भी कह जाय, तो उसका उत्तर बड़ी मधुरता से देना चाहिए।

बहन शांता, यदि तुमने मेरी इन बातों पर समुचित ध्यान दिया, और इन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास किया, तो सचमुच तुम गृह को सुख-स्वर्ग बना दोगी, और तुम सच्चे दांपत्य सुख का भोग कर सकोगी। आज इतना ही।

तुम्हारी
प्रिय सहेली
इंदिरा

---

* पत्र' पृष्ठ १६१-१६२।

मातृत्व

शांति-निवास, आगरा
३ मई, १९३७

मेरी दुलारी बहन !

नारीत्व का चरम विकास मातृत्व में है। मातृत्व नारी-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। संतान की इच्छा प्रत्येक नारी में होती है, और जिस नारी में संतान की स्वाभाविक इच्छा नहीं होती, वह नारीत्व के आदर्श से पतित होती है। भारतवर्ष में नारी का जीवन इतना पवित्र और पूज्य माना जाता है, उसका एकमात्र कारण है, उसकी मातृत्व-शक्ति। माता का पद पिता और आचार्य के पद से कहीं ऊँचा है। मातृत्व के इस गौरव के कारण ही हमारे यहाँ स्वदेश को 'मातृभूमि' नाम से संबोधन किया जाता है। योरप आदि पाश्चात्य देशों में स्वदेश को 'मातृभूमि' नहीं कहा जाता, प्रत्युत उसे 'पितृभूमि' कहा जाता है।

माता त्यागमयी होती है। वह अन्नपूर्णा है। सृष्टि-संचालन का पवित्र कार्य उसी पर निर्भर है। जिस देश में सुमाताएँ होती हैं, वह देश संसार में अपना मस्तक ऊँचा उठा सकता है। आज भारत की वर्तमान दुर्दशा का सब से बड़ा कारण है उसका दुखी मातृत्व।

माता का गौरव

"माता आत्मविसर्जन की प्रतिमा है। माता दया की मूर्ति है। माता कल्याण की प्रपा है। माता जीवन की पवित्र स्मृतियों का जीवित स्मारक है। माता कल्याण का भंडार है। माता अपने शरीर एवं मन का सरस विसर्जित करने, मनुष्यता को सदा दान देनेवाली अन्नपूर्णा है। माता त्याग की व्याख्या है।

माता जीवन-प्रदीप का स्नेह है, जो छिपकर, गुप्त रहकर, जलकर, मिटकर सबको प्रकाश देता है।

"माताओ! तुम ऐसी माताएँ बनो! तुम महान् हो। कोई तुमसे बड़ा नहीं है, यह अनुभव कर लेने से तुममें मातृत्व के सच्चे गौरव का वह प्रकाश जग जायगा, जो इस मनुष्य नामधारी पशुओं को मनुष्यता के, देवत्व के, अमरता के सच्चे मार्ग पर चलाएगा *।"

माता का पद जितना उच्च है, उतना ही वह उत्तरदायित्व-पूर्ण भी है। आज की माताएँ अपने उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार समझकर अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रही हैं। इस कारण हमारे देश में अज्ञानता, दुःख-दारिद्रय और नारी-जीवन के पतन का तांडव-नृत्य हो रहा है। आज यदि माताएँ सच्चे अर्थों में मातृत्व के उच्च पद को सुशोभित करें, तो देश का कल्याण हो जाय।

विवाह से पूर्व स्त्रियों को मातृत्व की बिलकुल शिक्षा नहीं दी जाती। यदि माता गर्भवती हो, तो वह अपनी नवयुवती पुत्री को इस 'रहस्य' का पता नहीं लगने देती। वह 'गर्भ-रहस्य' को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न करती है। परंतु जब उदर की वृद्धि होने लगती है, तब नवयुवती पुत्री के मन में विविध प्रकार की शंकाएँ पैदा होने लगती हैं। वह इस विचित्र परिवर्तन के रहस्य को जानने के लिये उत्सुक हो जाती है। अपनी सखी-सहेलियों से इस रहस्य का पता लगाना चाहती है; परंतु उसे उनसे भी पता नहीं चलता। वह जब तक स्वयं गर्भवती नहीं हो जाती, तब तक उसे इस संबंध में तनिक भी ज्ञान नहीं मिलता। इस अज्ञानता का उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ता है।

स्त्रियों में लज्जा यहाँ तक देखी गई है कि वे अपनी जननेंद्रिय की रचना एवं उसके कार्य का ज्ञान प्राप्त करने में भी संकोच करती हैं। परंतु यह मिथ्या लज्जा है। इसे नारी-सुलभ लज्जा नहीं कह सकते। गर्भ-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व स्त्री-जननेंद्रिय की रचना का ज्ञान आवश्यक है।

स्त्री-जननेंद्रियाँ

स्त्री-जननेंद्रिय के विवेचन से पूर्व वस्ति-गुहा (PelvtcCavity) के संबंध में लिखना उपयुक्त होगा।

---

* देखिए, 'भाई के पत्र', पृष्ठ १०७।

वस्ति-गुहा

मेरुदंड (Spinal Column) और अर्द्ध-शाखाओं के बीच में जो अस्थियों का चक्र है, उसे वस्ति, कूल्हा (Pelvis) कहते हैं। प्रसव के समय शिशु इसी के बीच से निकलता है। यह वस्ति तीन अस्थियों के मिलने से बनी है। दो अस्थियाँ 'अनामिका' (Innominate) कहलाती हैं। एक त्रिकास्थि (Sacrum) और एक पुच्छास्थि (Coccyx)। त्रिकास्थि मेरुदंड के निचले सिरे से लगी रहती है, और उसके नीचे पुच्छास्थि होती है। त्रिकास्थि के दोनो ओर अनामिकास्थि (Hip dones) होती है, जो गोलाई खाकर सामने परस्पर मिल जाती है। इस संधि-स्थान को त्रिदप-संधि या भग-संधि कहते हैं। वस्ति-गुहा के दो भाग माने गए हैं। ऊर्ध्व और अधः। ऊर्ध्व भाग (False pelvis) गर्भावस्था में गर्भाशय को सहारा देने के लिये होता है। परन्तु अधो भाग (True Pelvis) प्रसव-मार्ग होने के कारण अधिक महत्त्व-पूर्ण है।

स्त्री-जननेंद्रियाँ दो प्रकार की होती हैं— वाह्य और आंतरिक।

वाह्य जननेंद्रियाँ

वाह्य जननेंद्रियाँ वे हैं, जो बाहर से दिखाई देती हैं। इन्हें भग (Vulva) कहते हैं।

१. कामाद्रि—यह भग का अगला भाग होता है। इसके नीचे वसा होती है, और युवावस्था में यहीं लोम उग आते हैं।

२. बृहद् भगोष्ठ (Labia majora)—ये दोनो भगोष्ठ योनि-द्वार के दोनो ओर होते हैं। इनके अंदर वसा होती है, और युवावस्था में इन पर लोम उग आते हैं। बाल्यावस्था में इनका भीतरी भाग परस्पर मिला रहता है। पुरुष-प्रसंग या संतानोत्पत्ति के उपरांत ये दोनो अलग-अलग हो जाते हैं।

३. लघु भगोष्ठ (Labia minora)—ये दोनो भगोष्ठ बृहद् भगोष्ठों के भीतर, योनि-द्वार के आस-पास होते हैं। ये पतले और लाल रंग के होते हैं। दोनो ओर से भगांकुर के समीप आकर दोनो लघु भगोष्ठ दो भागों में दिखलाई देते हैं।

४. भगांकुर (Clitoris-)—ऊपर जहाँ दोनो बृहदोष्ठ मिलते हैं,

उससे प्रायः आधा इंच नीचे भगांकुर होता है। यह शिश्न की भाँति उत्तेजनशील होता है। भगांकुर या भगनासा शिश्न से बहुत छोटा होता है। इसमें शिश्न की भाँति कोई छिद्र नहीं होता। मैथुन के समय भगनासा में अधिक रक्त आने से और पेशियों के संकोच से उस रक्त के वहाँ भरे रहने से दृढ़ता और उत्तेजना आ जाती है।

५. योनि-द्वार (Vaginal orifice)—यदि दोनो वृहदोष्ठों और लघु भगोष्ठों को उँगली से अलग-अलग कर दिया जाय, तो योनि-द्वार दिखलाई पड़ेगा। इसी के द्वारा मैथुन किया जाता है। शिशु का प्रसव भी इसी मार्ग से होता है।

६. मूत्र-द्वार (Urethrel orifice)—यह मूत्र-द्वार एक छोटा-सा छिद्र योनि-द्वार से आधा इंच ऊपर होता है। मूत्र इसी से त्याग किया जाता है।

७. (योनिच्छद Hymen)—यह एक पतली त्वचा होती है, जिससे कुमारावस्था में योनि-द्वार आवृत रहता है। कभी-कभी यह चोट आदि लगने से फट जाती है और कभी-कभी यह इतनी कड़ी होती है कि मैथुन से भी नहीं फटती। अक्सर यह त्वचा मैथुन से फट जाती है, और इस कारण थोड़ा रक्त निकलता है।

आंतरिक जननेंद्रियाँ

आंतरिक जननेंद्रियाँ वे हैं, जो वस्ति-गुहा के भीतर होती हैं, और जो बाहर से दिखलाई नहीं देतीं।

१. योनि (Vagina)—यह एक नलिकाकार गह्वर होता है, जो गर्भाशय से लेकर भग तक फैला होता है। इसका नीचे का भाग संकीर्ण और ऊपर का भाग प्रसारित होता है। इसकी अगली दीवार दो या तीन और पिछली तीन या चार इंच लंबी होती है। इसके सामने मूत्र-नलिका (Urethra) और मूत्राशय (Bladder) और पीछे मलाशय (Rectum) रहता है। यह आवश्यकता पड़ने पर चौड़ी हो सकती है; परंतु साधारणतया इसकी दोनो दीवारें परस्पर मिली रहती हैं। प्रसव के समय योनि इतनी चौड़ी हो जाती है कि शिशु सुविधा-पूर्वक बाहर निकल सकता है। यह रबर की भाँति लचीली होती है। गर्भाशय की ग्रीवा का कुछ भाग योनि में रहने से उसके चारो ओर योनि के चार कोण

(Fronix) बन जाते हैं। योनि का स्राव या रस तक्राम्ल (Lacti-cacid) होने के कारण अम्ल होता है। यह अम्ल एक विशेष प्रकार के तक्राम्ल बनानेवाले जीवाणुओं द्वारा बनता। तथा अन्य प्रकार के जीवाणुओं के लिये नाशक होता है।

२. गर्भाशय (Uterus)—यह योनि के भीतरी द्वार से संयुक्त होता है। गर्भाशय की लंबाई २½ इंच से ३ इंच तक और चौड़ाई १½ इंच से १½ इंच तक होती है। प्रायः १ इंच मोटाई होती है। इसका आकार सेब या अमरूद की भाँति होता है। गर्भाशय त्रिकोण के आकार का होता है। एक कोण योनि से मिला रहता है, और शेष दो कोण डिंब-प्रणाली (Fellobian Tube) से मिले रहते हैं। गर्भाशय रबर की थैली की भाँति खाली रहता है। रमण के समय पुरुष के शुक्र-कीट से स्त्री के डिंब का संयोग हो जाता है, तब गर्भाधान हो जाता है, गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में नलिकाकार ग्रंथियाँ होती हैं, जिनमें से क्षारीय रस निकलता है। मूत्राशय और मलाशय के बीच बस्ति-गह्वर (pelvis) के मध्य में दो विस्तृत स्नायु (Broad ligaments) गर्भाशय को अपने स्थान में रखते हैं। जब ये स्नायु खिंचकर लंबे या ढीले हो जाते हैं, तो गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है।

३. डिंब-प्रणाली (Feliopian Tube)—गर्भाशय के दो सिरों से ये डिंब-प्रणालियाँ प्रारंभ होकर डिंब ग्रंथि के बाहर तक फैली हुई हैं। ये विस्तृत स्नायु के ऊपर के सिरों में आवृत रहती हैं। ये प्रायः चार इंच लंबी होती हैं, और इनका बाहर का सिरा झालर की तरह का होता है। डिंब-प्रणाली चार भागों में विभक्त है। पहला भाग गर्भाशय की दीवार में रहता है। दूसरा इससे आगे का संकीर्ण भाग, तीसरा कुछ चौड़ा भाग और अंतिम भाग फूल की भाँति कुछ खुला रहता है। जिस पर झालरें-सी लगी रहती हैं। इनमें से एक झालर डिंब ग्रंथि तक जाती है। डिंब-प्रणाली के सिरे से लगाकर बस्ति-गुहा के पार्श्व तक विस्तृत स्नायु का एक भाग लगा होता है।

४. डिंब ग्रंथियाँ (Ovaries)—स्त्री की ये डिंब ग्रंथियाँ पुरुष के अंड (Testicles) के समान होती हैं। इन ग्रंथियों में डिंब (Ova) पैदा होते हैं। डिंब ग्रंथियाँ दो होती हैं। ये दोनो विस्तृत स्नायुओं (Broad ligaments) के पिछले पृष्ठ पर लगी होती हैं। इनका

आकार कबूतर के अंडे की तरह होता है। लंबाई १॥ इंच, चौड़ाई ¾ इंच और मोटाई ½ इंच होती है। इन डिंब-ग्रंथियों में अनेकों डिंब-कोश (Graffiirn follicle) होते हैं; प्रत्येक डिंब-कोष में एक-एक डिंब (Ovum) होता है। डिंब-कोष परिपक्व होकर फटता है, और डिंब निकलकर धीरे-धीरे डिंब-प्रणाली में प्रवेश करता है। फटे हुए डिंब-कोष में रक्त भर जाता है, और कुछ समय पर्यंत इसी का एक पीला पिंड-सा बन जाता है, जिसे पीतांग (Corpusluteum) कहते हैं। यदि डिंब-कोष से निकले हुए डिंब और शुक्र-कीट के संयोग से गर्भ-स्थिति हो जाय, तो इस पीतांग में एक विचित्र परिवर्तन होने लगता है। और यह पीतांग क्रमशः बड़ा हो जाता है। यदि गर्भ स्थित न हो, तो यह पीतांग कुछ समय बाद सिकुड़कर श्वेत हो जाता है, और वह श्वेतांग कहलाता है। डिंब ग्रंथि से एक स्नायु गर्भाशय के एक कोने तक जाकर गोल स्नायु से मिल जाता है। इसे डिंब-ग्रंथि-स्नायु (Ovarian ligaments) कहते हैं।

५. डिंब (Ovum)—प्रत्येक डिंब $\frac{1}{120}$ इंच का एक गोल सेल (Cell) होता है। यह प्रति मासिक धर्म के साथ-साथ एक डिंब-ग्रंथि में तैयार होता है। यह डिंब इतना सूक्ष्म होता है कि आँखों से दिखलाई नहीं देता। जब मासिक धर्म प्रारंभ होता है, तब से इसका बनना शुरू हो जाता है, और डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय तक आने में १२ से १४ दिन का समय लग जाता है।

गर्भ-धारण

मासिक धर्म के बाद सहवास के समय जब पुरुष के शिश्न द्वारा योनि में वीर्य गिरता है, और इस वीर्य में स्वस्थ शुक्र-कीट (Spermatozoa) होते हैं, जब उनमें से किसी एक शुक्र-कीट का स्त्री की डिंब-ग्रंथि से निकले हुए डिंब से संयोग हो जाता है, तब गर्भधारण होता है। जब तक शुक्र-कीट और डिंब का गर्भाशय में संयोग नहीं होता, तब तक गर्भ-स्थिति नहीं हो सकती।

उच्च शिक्षा और मातृत्व

अनेकों शरीर-शास्त्रियों और डॉक्टरों ने लड़कियों की जाँच-पड़ताल करके यह निश्चय किया है कि लड़कियों को लड़कों के समान

शिक्षा देना हानिकर है। विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा तो मातृत्व की दृष्टि से और भी हानिप्रद है। उनका यह कथन है कि स्त्री की शरीर-रचना पुरुष की शरीर-रचना से भिन्न है, और कुमारावस्था में अधिक मानसिक परिश्रम करने से उनकी जननेंद्रियों का स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है। मासिक धर्म के समय उन्हें विश्राम करना चाहिए। परंतु इन दिनों में भी स्कूल-कॉलिज की छात्राओं को नियम-पूर्वक पढ़ना-लिखना और कॉलेज जाना पड़ता है। यही कारण है कि ये छात्राएँ मासिक धर्म-संबंधी नियमों का ठीक-ठीक पालन न करने से अस्वस्थ हो जाती हैं, और वे गर्भाशय-संबंधी रोगों का शिकार बन जाती हैं। सुप्रसिद्ध डॉक्टर जे० टी० विलसन ने लिखा है—"स्कूल की छात्राओं में मासिक धर्म-संबंधी जो शिकायतें पाई जाती हैं, उन्हें देखते हुए हमारा यह कर्तव्य है कि हम रजो-दर्शन के पूर्व लड़कियों की शारीरिक उन्नति पर विशेष ध्यान दें। मुझे आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि अमेरिका के स्कूलों में पढ़नेवाली लड़कियों में क़ब्ज़, सिर-दर्द, वर्ण-हीनता, मुहाँसे, प्रदर, अनिद्रा, भूख न लगना, अजीर्ण और थकावट आदि ख़राबियाँ बहुत अधिक देखने में आती हैं। इस कारण जिस समय उनको माता बनना चाहिए, उस समय तक वे अपाहिज बनने लग जाती हैं। मातृत्व को वे अत्यंत भय की दृष्टि से देखती हैं। उनका यह भय कुछ तो स्वाभाविक होता है और कुछ कृत्रिम।"

यद्यपि उक्त कथन डॉ० विलसन ने अमेरिकन स्कूल-छात्राओं के विषय में ही लिखा है, परंतु यदि भारत की कन्या-पाठशालाओं में कन्याओं के स्वास्थ्य की जाँच की जाय, तो उनके संबंध में भी उपर्युक्त कथन बिलकुल सत्य प्रमाणित होगा। कोरोसी-नामक विद्वान् ने ५१,८०० दंपतियों की जाँच करके यह प्रमाणित किया है कि संतानोत्पत्ति की सबसे अधिक शक्ति स्त्रियों में सोलह से बीस वर्ष तक और पुरुषों में पचीस से तीस वर्ष तक की अवस्था में रहती है। इसके पश्चात् जैसे-जैसे वय बढ़ती जाती है, संतनोत्पत्ति की शक्ति घटती जाती है। परंतु उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली स्त्रियाँ पचीस-तीस वर्ष की अवस्था में विवाह करती हैं। इससे वे मातृत्व के उत्तर-दायित्व को निबाहने योग्य नहीं रहतीं। इंग्लैंड के प्रसिद्ध लेखक

हैवलाक एलिस ने अपने 'सेक्स साइकोलोजी' (Sex psychology) नामक पुस्तक में लिखा है—

"मेरो-नामक विद्वान् के मतानुसार इक्कीस वर्ष तक की उम्र की माताओं की संतानें चरित्र तथा प्रतिभा की दृष्टि से, अधिक उम्र की माताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती हैं। इतना अवश्य है कि उनके पिता बहुत अधिक या कम उम्र के न हों। इस संबंध में एक प्रमाण यह दिया जा सकता है कि तीस साल से अधिक उम्र की स्त्रियों में गर्भ-स्राव की जितनी घटनाएँ होती हैं, पंद्रह से बीस साल की माताओं में ऐसी घटनाएँ उनसे आधी ही होती हैं। इसी प्रकार मैथ्यूज डंकन का मत है कि स्त्री की उम्र जितनी अधिक होती जाती है, उसे वंध्या होने की संभावना उतनी अधिक बढ़ती जाती है।"

मैसूर-युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर श्रीए० आर० वाडिया ने अपनी Ethics of Faminine-नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—

"भारतवर्ष और विशेष रूप से बंबई में पचीस वर्ष तक स्त्रियों को पुरुषों के ढंग की शिक्षा देने के फल-स्वरूप स्कूल जानेवाली लड़कियों का स्वास्थ्य बिलकुल चौपट हो गया है। जिन पारसी महिलाओं ने कॉलेज की परीक्षाएँ पास की हैं, उनमें से अधिकांश संतानोत्पत्ति के कष्ट को नहीं सह सकतीं, और प्रायः उसके कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।"

उपर्युक्त विद्वानों के मत से यह स्पष्ट है कि कुमारावस्था में तेरह वर्ष से बीस वर्ष तक लड़कियों को अधिक मानसिक परिश्रम नहीं करना चाहिए। इससे न केवल स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, बल्कि सननेंद्रियों को पर्याप्त रूप से पुष्टि न मिलने के कारण मातृत्व के लिये एक भयंकर खतरा है।

गर्भ-विज्ञान

भ्रूण—यह तो पहले ही बतला चुकी हूँ कि पुरुष के शुक्र-कीट और स्त्री के डिंब के संयोग से गर्भाधान होता है। इस गर्भाधान से जो ... होती है, उसे भ्रूण कहते हैं। अब डिंब में विचित्र ... आरंभ हो जाता है। भ्रूण की मींगी (Nucleus) और ... (prtoplasm), जिससे भ्रूण आवृत रहता है। दो भागों में ... जाती है। इसी प्रकार वह क्रमशः चार, चार से आठ और

आठ से सोलह 'सेलों'(Cells)में विभक्त हो जाती है। यह 'सेल'-रचना इतनी शीघ्रता से होती है कि प्रथम चौबीस घंटों में सैकड़ों 'सेलें' बन जाती हैं। इस सेल-समूह को कलल (M rula)कहते हैं। इस कलल के भीतर एक खोखला स्थान पैदा होता है, और इसमें कुछ तरल इकट्ठा होने लगता है, जिसके दबाव से बाहर की सेलें भीतर की सेलों से पृथक् हो जाती हैं। इस अवस्था को बुद्बुद (Blastocyeol) कहते हैं। भ्रूण सेल को बुद्बुद बनने में सात दिन लगते हैं, और अब इस दशा में यह भ्रूण डिंब-प्रणाली से गर्भाशय में प्रवेश करता है। बुद्बुद के भीतर की सेलों से भ्रूण का शरीर बनता है। बाहर की सेलों से भ्रूण को ढाँपनेवाली झिल्ली बनती है। फिर भीतर की सेलों में, एक ऊपर और एक नीचे, दो पोले स्थान पैदा होते हैं। और जहाँ ये दोनो मिलते हैं, वहाँ भ्रूण की उत्पत्ति होती है।

नाल क्या है—नाल (Umbilical cord) लसदार पदार्थ, नाभि रक्त-वाहिनियों, भ्रूण के निचले स्थान के शेष भाग आदि से निर्मित होता है। पूरा नाल प्रायः छ सप्ताह के अंत तक बनता है।

गर्भोदक या एक विशेष तरल पदार्थ (Lipuoramini)—जब गर्भ पूर्ण हो जाता है, तो गर्भोदक या तरल पदार्थ की मात्रा दस से पचीस छटाँक हो जाती है। पाँच छटाँक से कम या तीस छटाँक से अधिक रोग का लक्षण है। इसका रंग हलका पीला-सा होता है। गर्भोदक के कार्य ये हैं—(१) भ्रूण को आघात से बचाना, (२) भ्रूण की उष्णता को स्थिर रखना, (३) प्रसव के समय गर्भाशय की ग्रीवा को फैलाना, (४) भ्रूण पर चारो ओर के दबाव को समान करना और (५) बालक के जन्म से पूर्व तथा पश्चात् प्रसव-मार्ग को धो देना।

कमल क्या है?—कमल निम्न-लिखित अवयवों से बनता है। भ्रूण बाह्यावरण का अंकुर विशिष्ट भाग; भ्रूण के नीचे की गर्भ-कला (piaeenta) (गर्भाशय की गर्भाधान के पश्चात् श्लैष्मिक कला का परिवर्तित रूप गर्भ-कला होता है), इन दोनो के बीच के पोले स्थान, जिनमें माता का रक्त रहता है। कमल तीसरे मास तक संपूर्ण बन जाता है। कमल ने जो बाह्यावरण के अंकुर होते

हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक तो गर्भाशय की दीवार को पकड़नेवाले और दूसरे जो आशयों में लटकते हैं, और पोषणार्थ होते हैं। साधारण दशा में भ्रूण और मा का रक्त-संचार परस्पर नहीं मिलते। गर्भ-पूर्णता पर कमल का व्यास ६ इंच होता है, और मध्य में $\frac{3}{4}$ इंच मोटा होता है। नाल इसके केंद्र के समीप लगा रहता है। कमल का भार प्रायः भ्रूण का $\frac{1}{6}$ होता है।

कमल के कार्य—(१) श्वासोच्छ्वास-क्रिया—अर्थात् भ्रूण के रक्त से कर्बन द्वि ओषित मा के रक्त में भेजना और मा के रक्त से ओषजन भ्रूण के रक्त में भेजना, (२) पौष्टिक पदार्थों को माता के रक्त से भ्रूण के रक्त में भेजना, (३) मलीन पदार्थों को भ्रूण के रक्त से माता के रक्त में भेजना, (४) अनावश्यक और अनिष्ट पदार्थों को माता के रक्त से भ्रूण के रक्त में न आने देना ❀।

गर्भ का विकास

१. पहले दिन—$\frac{1}{10}$ इंच से कुछ बड़ा होता है। एक दाने के समान कुछ उभरा हुआ।

२. पाँचवें दिन—पानी के छोटे बुलबुले के समान।

३. आठवाँ दिन—कफ की एक गाँठ के समान। लंबाई $\frac{1}{10}$ इंच। वजन एक ग्रेन।

४. पंद्रहवाँ दिन—लंबाई $\frac{1}{12}$ इंच; वजन $\frac{1}{2}$ रत्ती।

५. तीसरा सप्ताह—वजन गेहूँ के चार दाने।

६. चौथा सप्ताह—आकर कीड़े के समान टेढ़ा। सिर तथा पाँव के आकर बनने लगते हैं। लंबाई $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इंच तक।

७. छठा सप्ताह—इस समय सिर शरीर से बड़ा हो जाता है। आँख, कान, नाक, मुँह के स्थान पर काले-काले दाग़ मालूम होते हैं। लंबाई एक इंच।

❀ इस पत्र के लिखने में मुझे डॉ० रामदयाल कपूर, प्रोफ़ेसर गुरुकुल काँगड़ी को 'प्रसूति-तंत्र'-नामक पुस्तक से बहुत सहायता मिली है। इसके लिये मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। जो पाठिकाएँ इसका विस्तार अध्ययन करना चाहें, वे उक्त पुस्तक को पढ़ें। पुस्तक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से प्राप्त हो सकती है।

८. सातवाँ सप्ताह—छाती का ढाँचा, जबड़े, पसली, हड्डी बनने लगती है। हृदय बढ़ता है। सिर कुछ बड़ा हो जाता है। हाथ-पैर बनने लगते हैं। आँख, कान, मुँह और नाक के चिह्न स्पष्ट दिखलाई देते हैं। लंबाई एक इंच।

९. आठवाँ सप्ताह—हाथ-पाँव, पंजे, मुँह, नाक और कान साफ दिखाई देते हैं। मुँह कुछ बड़ा। लंबाई दो इंच। वज़न दो तोले। आकार मुर्गी के अंडे के समान।

१०. नवाँ सप्ताह—आँखें बढ़ती हैं; पलकें दिखाई पड़ती हैं। लंबाई सवा दो इंच, वजन तीन तोले।

११. दसवाँ सप्ताह—गला साफ दिखाई देता है। लंबाई ढाई इंच। वजन साढ़े चार तोले।

१२. ग्यारहवाँ सप्ताह—पलकें तैयार हो जाती हैं, पर बंद रहती हैं। नाक के छिद्र बन जाते हैं। ओठ दिखाई पड़ते हैं। पर मुँह बंद रहता है। कलेजा तैयार हो जाता है। लंबाई तीन इंच। वजन छ तोले।

१३. बारहवाँ सप्ताह—हाथ-पाँव उँगलियों सहित साफ दिखलाई पड़ते हैं। लड़का-लड़की का अंतर स्पष्ट होने लगता है। नाभि में भ्रूण तक रक्त पहुँचाने-वाली नाल साढ़े तीन इंच लंबी होती है। कमर एवं पाँव की पिंडलियाँ बनने लगती हैं। वजन दस तोले, लंबाई चार इंच।

१४. चौथा महीना—रग-पट्ठे दिखाई देते हैं। चेहरा लंबा हो जाता है। फेफड़ा तैयार हो जाता है। बालक का हिलना भी कुछ कुछ जान पड़ता है। लंबाई छ इंच, वजन बीस तोले।

१५. पाँचवाँ महीना—सिर पर पूरे बाल उगते हैं। चमड़ी चिकनी होती है। रग-पट्ठे मजबूत बन जाते हैं। बच्चा अक्सर हिलता है। लंबाई दस इंच, वजन तीस तोले।

१६. छठा महीना—ऊपर की चमड़ी तैयार होती है। उँगलियों मे

नाखून उगते हैं। लंबाई एक फुट, वजन एक सेर।

१७. सातवाँ महीना—इस महीने के अंत तक शरीर के सब अंग बन जाते हैं। बच्चा गर्भाशय में उलटा हो जाता है। बोझ के कारण पाँव ऊपर और सिर नीचे हो जाता है। पलकें खुलने लगती हैं। यदि इस आयु का बालक जीवित उत्पन्न हो, तो कुछ दिन तक उसके जीने की संभावना हो सकती है, पर वह अधिक दिन जीवित नहीं रहता। लंबाई चौदह इंच, वजन डेढ़ सेर।

१८. आठवाँ महीना—सब अंग पुष्ट होते हैं। चेतनता आती है। लंबाई डेढ़ फुट और वजन ढाई सेर।

१९. नवाँ महीना—इस समय बालक का शरीर पुष्ट होता है। लंबाई बीस इंच तक और वजन तीन से पाँच सेर तक हो जाता है।

२०. दसवाँ महीना—बालक की लंबाई बीस इंच के लगभग होती है। बालक का पूर्ण विकास हो जाता है। इस मास में बालक के पैदा होने की पूरी संभावना होती है *।

गर्भ-धारण के दिन से बालक पैदा होने तक प्रायः दो सौ अस्सी दिन अर्थात् नौ महीने दस दिन लगते हैं। कभी इससे अधिक दिन लग जाते हैं, और कभी इससे कम दिन भी।

गर्भ-धारण के तात्कालिक लक्षण

तत्काल गर्भ-धारण करनेवाली स्त्री में निम्न-लिखित लक्षण पाये जाते हैं—

योनि में बीज का सम्यक् रीति से ग्रहण, तृप्ति, कोख में भारीपन, फड़कन, संभोग के बाद योनि से वीर्य बाहर न निकलना। हृदय में

* देखिए, श्रीरामनाथलाल 'सुमन' के 'भाई के पत्र' में उद्धृत श्री-अयोध्याप्रसादजी की 'संतति-शास्त्र' पुस्तक का अंश, पृष्ठ २१७।

मस्तक, आँखों में भारीपन, तृषा, ग्लानि और रोमांच होना । ये लक्षण गर्भ-धारण के बाद स्पष्ट दिखलाई देने हैं ।

गर्भ के लक्षण

चतुर स्त्रियों को गर्भाधान के पश्चात् ही गर्भ का ज्ञान हो जाता है । परन्तु इसमें संदेह नहीं कि प्रथम मास में तो उसके लक्षणों से यह पता लग जाता है कि स्त्री गर्भवती है ।

पहला मास—यदि स्त्री को मासिक धर्म संबंधी कोई रोग न हो, तो गर्भ धारण के पश्चात् मासिक धर्म नहीं होता । यह गर्भ का प्रथम और निश्चित लक्षण है । स्त्रियों का जी मचलाता है; बार-बार थूकने की इच्छा होती है; मुख से पानी अधिक निकलता है । भूख अधिक लगने लगती है, और चेहरे पर दुर्बलता के चिह्न होते हैं ।

दूसरा मास—स्तन बड़े और स्थूल हो जाते हैं, और इनमें कठोरता भी आ जाती है । स्तनों के मुख पर चूचुक भी बड़े हो जाते हैं, इनके आस-पास काले रंग के बिंदु-जैसे धब्बे उभरे-से दिखाई देते हैं, इनमें वेदना होती है । प्रातःकाल शयन से उठने पर वमन होती है । स्वभाव बदल जाता है । नीली रगें प्रकट हो जाती हैं, और नाभि-प्रदेश भीतर को हो जाता है । इस मास के अंत तक स्त्रियों के स्तनों में दूध उत्पन्न हो जाता है ।

तीसरा मास—गर्भवती के पेशाब को एक शीशे के बरतन में रख दिया जाय, तो उसके ऊपर सफ़ेद रंग का मलाई-जैसा हलका द्रव तैरने लगता है ।

चौथा मास—गर्भवती का उदर सामने की ओर अधिक बढ़ने लगता है । स्तनों के चूचुक फूल जाते हैं । नाभि ऊपर की ओर उठ आती है । गर्भाशय में भ्रूण का हिलना-डुलना स्पष्ट ज्ञात पड़ता है । जैसे-जैसे बालक गर्भाशय में विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे हिलना-डुलना भी अधिक मालूम होता है । यह परीक्षा की हुई बात है कि गर्भाशय में जब भ्रूण पहले पहल हिलता-डुलता है, उससे चार मास बीस दिन बाद बालक का जन्म होता है ।

पाँचवाँ मास—गर्भवती के स्तन के चूचुक के चारों ओर दूसरा काला चक्कर—जिस पर श्वेत चिह्न प्रकट होते हैं—पड़ जाता है ।

पाँच महीने के गर्भस्थ बालक के हृदय का शब्द गर्भवती के उदर पर एक प्रकार का यंत्र लगाने से सुनाई पड़ता है।

एक लेखक का यह कथन है—"गर्भ में पुत्र है या पुत्री, यह भी इस शब्द से जाना जा सकता है। एक मिनट में कम-से-कम यदि एक सौ पचीस ध्वनि सुनाई पड़े, तो पुत्र समझे, और यदि बीस-बाईस बार सुनाई पड़े, तो पुत्री। ज्यों-ज्यों प्रसव का समय अधिक निकट आता जाता है, त्यों-त्यों यह शब्द अधिक स्पष्टता से सुनाई पड़ने लगता है*।" यदि गर्भस्थ बालक के हृदय का यह शब्द सुनाई न पड़े, तो यह जानना चाहिए कि बालक जीवित नहीं है।

छठा मास—इस महीने में गर्भवती के अस्वस्थ लक्षण (जी मचलाना, वमन, मंदाग्नि आदि) दूर हो जाते हैं। वह अब स्वस्थ प्रतीत होने लगती है। सातवें, आठवें और नवें मास में उदर विशेष रूप से अधिक बड़ा हो जाता है। गर्भस्थ बालक इन महीनों में बड़े वेग से गति करने लगता है, और गर्भवती बड़ी आसानी से स्पष्ट रूप से इन गतियों और हृदय के शब्द को अनुभव करती है।

गर्भवती की दिनचर्या

गर्भवती पर अब बड़े उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ता है। अब तक तो उसे अपने शरीर की सँभाल रखनी पड़ती थी, परंतु अब उसे अपने और गर्भस्थ बालक की हित-कामना और रक्षा के लिये प्रयत्न करना पड़ता है।। अतः गर्भवती स्त्री को गर्भावस्था में विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है। माता को सदैव यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जैसा उसका स्वास्थ्य, शरीर और मन होगा, वैसा ही उसके बालक का होगा। यह तो प्रमाणित है कि गर्भवती मा की जीवन-चर्या का गर्भस्थ बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मा को अपने स्वास्थ्य की ओर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

भोजन—स्वास्थ्य की रक्षा के लिये भोजन सबसे आवश्यक

* देखिए श्रीविश्वबहादुरसिंह बी० ए० लिखित 'फूलों की सेज'; १८८।

है। भोजन हलका, पचनशील और पुष्टिकर होना चाहिए। दूध, घी, फल, मेवा, दही और शाक-भाजी अधिक परिमाण में खानी चाहिए। फलों का रस भी पीना चाहिए। जल अधिक पीना चाहिए, क्योंकि गर्भस्थ बालक को जल की अधिक आवश्यकता होती है। भ्रूण एक प्रकार के जल (गर्भोदक) में अधर लटका रहता है। जल से उसकी रक्षा होती है। भोजन सात्त्विक होना चाहिए। अधिक गरिष्ठ, मसालेदार और गरम भोजन हानिप्रद होते हैं।*

यह सच है कि गर्भावस्था में गर्भवती की भोजन-लालसा बड़े विचित्र प्रकार की होती है। भाँति-भाँति की चीजें खाने के लिये स्त्रियों का मन चला करता है। उनमें विशेष रूप से खास चीजें खाने की बड़ी लालसा होती है। उनकी भोजन-लालसा में दो विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। एक तो उनकी भोजन की लालसा साधारण दशा से बहुत कम हो जाती है, और वे अपने को वश में नहीं रख सकतीं; दूसरे उनमें कभी-कभी ऐसी वस्तुएँ खाने की इच्छा पैदा होती है, जिन्हें वे गर्भावस्था से पूर्व नहीं खाती थीं। अथवा ऐसी चीजें खाने की इच्छा बड़ी बलवती हो जाती है, जो खाद्य पदार्थ नहीं होते। हमारे देश में गर्भवती स्त्रियों में मिट्टी खाने की बड़ी इच्छा होती है। अनेकों स्त्रियाँ सुराहियाँ, कंकड़, हँडिया आदि तोड़कर खा जाती हैं। कोई-कोई गंगा-यमुना की रेतीली मिट्टी खाती हैं। बहुतेरी चूल्हे की जली मिट्टी बड़े स्वाद से खाती हैं। लखनऊ, बनारस, कलकत्ता आदि नगरों में गर्भवती स्त्री की इस विचित्र इच्छा की तृप्ति के लिये कुम्हार मिट्टी की बहुत

---

* गर्भवती को सात्त्विक भोजन करना चाहिए। इस विषय में डॉ० विनफ्रीड स्काट हाल ने अपनी 'काम-विज्ञान'-पुस्तक में लिखा है—

"Foods in their simple form are best for both mother and child . ...No mention has been made of meat, which is a tissuebuilder, because of the uric acid which it contains."

"जो भोजन सादे हैं, वे मां और बालक, दोनों के लिये सर्वोत्तम हैं—......... मांस की चर्चा नहीं की गई है, क्योंकि उसमें 'यूरिक एसिड' होती है, जो हानिप्रद है।"

पतली-पतली आँचें में पकाई हुई छोटी-छोटी टिकियाँ बेचते हैं। ये टिकियाँ गर्भवती स्त्रियों के सिवा दुनिया में और किसी के काम नहीं आतीं। लखनऊ में इन्हें सनकियाँ कहते हैं। मिट्टी के अतिरिक्त खड़िया और कोयला आदि भी खाया जाता है। सोंधी चीजें और बेफ़सल के फलों की उनमें विशेष इच्छा होती है। इसके अतिरिक्त गर्भवती में उन वस्तुओं के प्रति घृणा पैदा हो जाती है, जिन्हें वह गर्भावस्था से पहले बड़े चाव से सेवन करती थी। मिट्टी आदि सेवन करना अत्यंत हानिकर है।

भारतीय आयुर्वेद के ग्रंथों में यह बतलाया गया है कि 'दौहृद'—गर्भवती की भोजन-लालसा—केवल खाने-पीने की तृप्ति का ही नहीं होता, वरन् वह शब्द, रस, गंध आदि इंद्रियों के सभी भोगों का होता है। अर्थात् गर्भवती में खाने-पीने के अतिरिक्त कोई विशेष शब्द सुनने, किसी खास चीज को छूने, किसी पदार्थ-विशेष या द्रव या दृश्य को देखना अथवा किसी विशेष गंध को सूँघने आदि बातों की भी लालसाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं।

ऐसा कहा जाता है कि वंशलोचन गर्भवती को खिलाने से उसकी मिट्टी खाने की लालसा तृप्त हो जाती है। वंशलोचन 'शीतोपलादि चूर्ण' में डाला जाता है। यह हानिप्रद नहीं है। कहा जाता है कि जो गर्भवती वंशलोचन खाती है, उसकी संतान गोरी और सुंदर होती है। कलकत्ते के एक वैद्य का कथन है कि गर्भवती को कच्चे नारियल की गिरी खिलावे और उसका पानी पिलावे, तो संतान गोरी होती है। वे स्वयं कई स्त्रियों पर इसका प्रयोग आजमा चुके हैं *।

इसमें संदेह नहीं कि गर्भवती की भोजन-लालसा तृप्त न होने पर गर्भस्थ बालक पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता †। परंतु उसकी लालसा-

---

* देखिए श्रीव्रजमोहन वर्मा का 'गर्भवतियों में भोजन-लालसा'-लेख 'चाँद' जून, १९३१ ई०, पृष्ठ १८२।

† चरक कहते हैं—"गर्भिणी के दौहृद की अवहेलना न करनी चाहिए। अवहेलना करने से गर्भ नष्ट हो विकृत हो जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि में माता और गर्भ की समान इच्छा होती है। इसलिये गर्भिणी के प्रिय और हित पदार्थों से उसका उपचार करना चाहिए। वाग्भट्ट और सुश्रुत की भी यही सम्मति है।

वृद्धि के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गर्भवती कोई अखाद्य पदार्थ ग्रहण न करे, अथवा ऐसा पदार्थ सेवन न करे, जो हानिकर हो।

मानसिक स्वास्थ्य—गर्भवती को अपने शारीरिक स्वास्थ्य का जितना ध्यान रखना चाहिए, उतना ही अपने मानसिक स्वास्थ्य का भी। मन को बहुत पवित्र रखना चाहिए। सदैव प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। काम-क्रोध से सदैव दूर रहना चाहिए। माता के विचारों का गर्भस्थ बालक पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था में गर्भिणी को सत्साहित्य, वीर पुरुषों का जीवन-चरित्र, महात्मा और ऋषियों के अमृतमय उपदेश, प्रसिद्ध देश-भक्त, राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिकों के जीवन चरित्र और उनके साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। चिंता, शोक, ग्लानि, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकारों को मन में स्थान न देना चाहिए। इस प्रकार हर प्रकार से अपने जीवन को पवित्र और ऊँचा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। मनचाही संतान पैदा करना मा के ऊपर निर्भर है। मा चाहे, तो अपनी संतान वीर, सदाचारी, विद्वान्, सुंदर और तेजस्वी बना सकती है।

विश्राम और शयन—गर्भवती को विश्राम और शयन की अधिक आवश्यकता होती है। रात्रि में पूरी नींद लेनी चाहिए। रात को नौ बजे सो जाना चाहिए। अधिक देर तक रात्रि-जागरण स्वास्थ्य और भावी संतान के लिये हानिकर है। परंतु, दिन-भर पलँग-शायी रहना—पलँग पर हर समय आलस्य-वश पड़े रहना ठीक नहीं। इससे मा और बच्चे, दोनो के स्वास्थ्य की हानि पहुँचती है। जो माताएँ गर्भावस्था में गृह के साधारण काम-काज करना त्याग देती हैं, और सिर्फ बैठी रहती या पलँग पर लेटी रहती हैं, उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, और फलतः प्रसव के समय उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। जो मा अपना दैनिक गृह-कार्य बड़ी स्फूर्ति से करती और प्रत्येक कार्य में दिलचस्पी लेती हैं, उनकी मांस-पेशियाँ मजबूत रहती हैं, और शरीर में क्रियाशीलता रहती है। प्रसव के समय उन्हें विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यदि अन्य सब बातें ठीक हों, तो ऐसी मा का बालक अधिक बलवान और क्रियाशील उत्पन्न होगा। गर्भवती को कभी आलस्य न करना चाहिए। हाँ, इतना परिश्रम न किया जाय, जिससे निज स्वास्थ्य या गर्भ को हानि पहुँचने का भय हो।

व्यायाम—गर्भवती को व्यायाम न करना चाहिए। उसे दौड़ना, उछलकर चलना और कूदना न चाहिए। कोई ऐसा कार्य भी न करना चाहिए, जिससे उदर और गर्भाशय पर दबाव पड़े। भारी वज़न या भार भी न उठाना चाहिए।

वस्त्राभूषण—वस्त्र बहुत ही सादे, हलके और ढीले हों। वे वस्त्र न पहनने चाहिए, जो शरीर से बिलकुल चिपटे रहें। साड़ी इतनी ढीली बाँधनी चाहिए कि उदर पर उसका दबाव न पड़े। नीचे 'पेटी कोट' पहना जा सकता है, परंतु वह ऐसा हो, जिससे गर्भस्थ बालक को हानि न पहुँचे ❀।

दांपत्य विज्ञान की आचार्या डॉ० मेरी स्टोप्स के शब्दों में गर्भवती के वस्त्र इतने ढीले और हलके होने चाहिए कि कपड़ों के नीचे नग्न शरीर पर तितली चले, तो उसके पर न टूटें।

शुद्ध जल-वायु

गर्भवती को शुद्ध जल का सेवन करना चाहिए। उसे शुद्ध वायु की अधिक आवश्यकता होती है, इसलिये प्रभात-काल में वाटिका, पार्क या उपवन में भ्रमण अवश्य करना चाहिए।

गर्भावस्था में संभोग हानिकर है

गर्भावस्था के प्रारंभिक दिनों में गर्भवती में भोग-वासना की इच्छा होती है। परंतु इन दिनों में संभोग न करना चाहिए। गर्भवती के साथ मैथुन करने से निम्न-लिखित हानियाँ होने का भय है—

(१) गर्भवती से मैथुन के समय गर्भाशय के हिल-डुल जाने से गर्भ-स्राव और गर्भ-पात का भय रहता है।

(२) स्त्री की जननेंद्रियाँ अधिक कोमल हो जाती हैं; इसलिये उनमें चोट लगने का भय है।

❀ The sensitiveness to pressure, often unconscious, at such a time is extraordinary and the penalty of even the slightest pressure is the morning sickness.

इस समय थोड़े-से भी दबाव का अनुभव असाधारण होता है, और थोड़े से दबाव की सज़ा प्रभातकालीन उबकाई और वमन के रूप में भोगनी पड़ती है—Vide Married love p. 177.

(३) शिश्न द्वारा रोग के कीटाणु योनि में प्रविष्ट हो सकते हैं, और इनका दुष्प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ सकता है।
(४) गर्भाशय में शिश्न से चोट लग जाने का भय है।

इसके अतिरिक्त गर्भावस्था में गर्भवती को अधिक विश्राम करना चाहिए, और यदि संभोग किया गया, तो स्नायु-मंडल अधिक उत्तेजित हो जायगा, और उसका फल उसके लिये हानिप्रद होगा। पुरुष को भी चाहिए कि वह स्त्री के गर्भ-धारण के उपरांत एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहे। नौ मास तो गर्भावस्था और तीन मास प्रसव के बाद भी ब्रह्मचारी रहना चाहिए, अर्थात् मैथुन न करना चाहिए।

गर्भावस्था में रोग

गर्भावस्था में भयानक रोगों का उत्पन्न होना मा के जीवन के लिये ही सांघातिक नहीं होता, बल्कि उससे शिशु का जीवन भी ख़तरे में पड़ जाता है। गर्भवती को बिना किसी योग्य, अनुभवी डॉक्टर या वैद्य की सलाह लिए कोई औषध न खानी चाहिए। अनावश्यक औषध सेवन से गर्भ के लिये हानि की संभावना है। परंतु साधारण रोगों के निवारण के लिये औषध सेवन अवश्य करनी चाहिए।

(१) क़ब्ज़

गर्भवती को अपना पेट साफ़ रखना चाहिए। क़ब्ज़ से सदा बचने का यत्न करे। क़ब्ज़ दूर करने के लिये विरेचन (Purgative) का कदापि सेवन न करना चाहिए। निम्न-लिखित औषधियों का सेवन हितकर है—

(१) रेंडी का तेल एक तोला दूध में मिलाकर पीना चाहिए।
(२) त्रिफला का चूर्ण आधा तोला गरम पानी के साथ खाना चाहिए।

(२) उबकाई या वमन

गर्भवती को पहले चार-पाँच मास तक उल्टी या उबकाई आती है। ये प्रायः प्रातःकाल आती हैं। इन्हें अँगरेज़ी में 'प्रभात की बीमारी' (Morning Sickness) कहते हैं।

(१) इसके निवारण के लिये एक उपाय तो यह है कि वस्त्र अधिक हलके और ढीले पहनने चाहिए, जैसा ऊपर बतलाया है। उदर पर बिलकुल दबाव न पड़े, (२) साठी के चावलों का भात गाय के दही एवं चीनी के साथ खाना चाहिए, (३) पीपल की छाल पानी में औटाकर, छानकर पीना चाहिए, (४) एक चम्मच-भर तुलसी के रस में इलायची पीसकर पीना चाहिए और (५) पका केला खाने से भी लाभ होता है।

गर्भ-स्राव और गर्भ-पात

गर्भावस्था में गर्भ-स्राव और गर्भ-पात, ये दो बड़े संकट हैं। गर्भवती को इनसे सदैव अपनी रक्षा करनी चाहिए।

गर्भ-स्राव के कारण

जब गर्भवती स्त्री का गर्भ गर्भाधान के चार मास के भीतर गिर जाता है, तब उसे गर्भ-स्राव (Miscarriage) कहते हैं। अचानक भय, अधिक शोक, चिंता, अधिक गरम मसाला, अपाच्य गरिष्ठ भोजन, अति मिष्टान्न एवं स्निग्ध पदार्थों का अधिक लगातार सेवन, चाय, क़हवा, मदिरा आदि का सेवन, अश्लील नाटक और दृश्यों द्वारा उत्तेजना अथवा गर्भ-काल में अत्यंत मैथुन आदि गर्भ-स्राव के कारण हैं। इनके अतिरिक्त अधिक दस्त या उल्टी और अधिक क़ब्ज़ या उदर में वेदना होने से गर्भ-स्राव हो जाता है। गर्भवती को मारने, अचानक धक्का लगने, ऊँचे से गिरने से गर्भ-स्राव हो जाता है। गर्भाशय की दुर्बलता भी गर्भ-स्राव का एक प्रमुख कारण है।

गर्भ-स्राव के लक्षण

कमर में प्रसव-वेदना की तरह पीड़ा होती है। पेट के भीतर भी पीड़ा होती है। पेशाब खुलकर नहीं निकलता, बूँद-बूँद टपकता है। पेट पिचक जाने की तरह दिखाई देता है। थोड़ा ज्वर भी आ जाता है; सिर में पीड़ा होती है, कमर और जाँघ में दर्द होता है। योनि-मार्ग से रक्त बहने लगता है।

गर्भ-पात

यदि गर्भ चौथे से सातवें महीने में गिर जाय, तो उसे गर्भ-पात या

'Abortion' कहते हैं। इन रोगों का उपचार योग्य डॉक्टर या वैद्य से कराना चाहिए ❀।

आज इतना ही सही। अगले पत्र में प्रसूता और प्रसव के संबंध में लिखूँगी।

तुम्हारी
इंदिरा

११

प्रसव और प्रसूता

शांति-निवास, आगरा
१० मई, १९३७

बहन शीला,

आज मैं इस पत्र में एक बड़े महत्त्व-पूर्ण विषय की चर्चा करना चाहती हूँ। यह विषय मातृत्व की दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। परन्तु हमारे देश में इस विषय की बड़ी अज्ञानता है। हमारे देश में प्रसव विज्ञान और धात्री-कार्य अपनी शैशवावस्था में है। आजकल भी पुराने युग की असभ्य, फूहड़ और अज्ञान दाइयों का बोलबाला है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष नवजात शिशु बहुत बड़ी संख्या में मर जाते हैं, और प्रसूताएँ भी 'प्रसूति-गृह' में ही काल-कवलित हो जाती हैं। इन सबका एकमात्र कारण है वैज्ञानिक प्रसव-विधि की अज्ञानता। लाहौर के एक सफल भारतीय डॉक्टर डा० आर० धर्मवीर ने सन् १९२८ के आँकड़ों के हिसाब से यह निश्चय किया है कि भारत में बीस लाख बालक एक साल के होने से पूर्व ही मर जाते हैं! 'सन् १९२४-२५ में भारतीय भारत-सरकार की रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि "हर साल बीस लाख भारतीय बालक मृत्यु का शिकार होते हैं। अतः इस भीषण बाल-मृत्यु और प्रसूताओं की अकाल मृत्यु के अवरोध की समस्या तब तक हल नहीं हो सकती जब तक प्रसव-विधि के वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार न किया जाय।"

प्रसव वेदना

का समय—बच्चा उत्पन्न होने का समय—कठिनतम
गर्भवती को अधिक देखना होता है।

वेदना के कारण प्रसव के कष्ट से बुरी तरह भयभीत हो जाती है। थोड़ी-बहुत प्रसव-पीड़ा सभी स्त्रियों को होती है। जो स्त्रियाँ गर्भकाल में आलसी नहीं रहतीं, अपने दैनिक कार्य नियम-पूर्वक स्फूर्ति के साथ करती और क्रियाशील होती हैं, एवं जिनका स्वास्थ्य श्रेष्ठ होता है—कोई रोग नहीं होता, उन्हें प्रसव-वेदना कम मालूम होती है। ऐसी भी स्त्रियाँ देखने में आई हैं, जो प्रसव से एक-दो घंटे पूर्व बड़े प्रेम से परिजनों और पति से वार्तालाप कर रही और थोड़ा देर पीड़ा के उपरांत उनके बच्चा हो गया। कभी-कभी, प्रसव से दस-पंद्रह दिन पूर्व, गर्भवती की पीठ और पेड़ू में पीड़ा होती है। कमर और जाँघ में दर्द होने लगता है। ऐसा मालूम होता है कि गर्भस्थ बालक बाहर निकल रहा है। यह सब शारीरिक दुर्बलता के कारण होता है।

प्रसव-काल की वेदना साधारणतया दो-तीन घंटे रहती है। प्रथम प्रसव में वेदना अधिक प्रतीत होती है, परंतु जैसे जैसे अधिक बालक उत्पन्न होते हैं, वैसे-वैसे वेदना कम होती जाती है।

आसन्न प्रसूता के लक्षण

प्रसव-वेदना आरंभ होने से पूर्व गर्भवती का मुख-मंडल पहले से अधिक सुंदर प्रतीत होता है। शरीर की रंगत भी निखर जाती है। वह पहले से अधिक श्वास लेने लगती है। प्रसव-वेदना आरंभ होने से कुछ घंटे पहले गर्भवती के पेट का निचला भाग कुछ पिचक जाता है। प्रसव का समय अति निकट आ जाता है, तब गर्भवती का शरीर और मुँह कुम्हला जाता है। मुख और नेत्रों में शिथिलता प्रतीत होती है। अन्न से अरुचि हो जाती है। उसके योनि-द्वार से एक प्रकार का तरल द्रव निकलता है। जब इस तरल द्रव के साथ रक्त का भी कुछ भाग दिखलाई देता है, तब यह जान लेना चाहिए कि प्रसव का समय अति निकट है। पेशाब जल्दी-जल्दी होता है। शौच साफ नहीं होता और तकलीफ होती है। हाथ-पाँव ठंडे हो जाते हैं। मुख से एक प्रकार का पानी छूटने लगता है और उबकाई आती है। प्रसव हो जाने के बाद यह पानी बंद हो जाता है।

जब प्रसव-द्वार से तरल पदार्थ निकलने लगे, और उसमें कुछ रक्त

का भाग भी दिखाई पड़े, तब गर्भवती को प्रसूति-गृह में पलँग पर चित शांति-पूर्वक लेट जाना चाहिए।

प्रसूतागार

हमारे देश में दुर्भाग्य से प्रसव-कार्य को इतना अशुद्ध मानते हैं कि जिस स्थान पर प्रसव-कार्य संपादन किया जाता है, वह गृह का सबसे गंदा, मलिन और अशुद्ध स्थान होता है। प्रसूता को ऐसी कोठरी में डाल दिया जाता है, जहाँ न प्रकाश जा सके और न शुद्ध वायु। हमारे देश में बढ़ती हुई बाल-मृत्यु का एक प्रमुख कारण सूतिकागार का कुप्रबंध है। अतः जो स्त्रियाँ अपने शिशु का मंगल चाहती हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने गृह का सर्वोत्तम कमरा प्रसूतागार के लिये चुनें। उसकी लंबाई पंद्रह फ़ीट और चौड़ाई आठ-दस फ़ीट से कम न हो। उसमें स्वच्छ हवा आने के लिये खिड़कियाँ हों; परंतु प्रसूता और नवजात शिशु को हवा के झोंकों से सुरक्षित रखना चाहिए। कमरे का फ़र्श सूखा हो—गोबर, मिट्टी से लिपा हो, या चूने का पक्का फ़र्श हो। उसमें सील न हो। प्रसूतागार के आस-पास का वातावरण शुद्ध हो। कमरे में अनावश्यक चीज़ें न हों। प्रसूता के लिये पलँग हो। उस पर जो बिस्तर बिछाया जाय, वह बिलकुल शुद्ध होना चाहिए। मकान का फ़र्श और दीवार रसकपूर के पानी से धो देनी चाहिए। गर्भिणी को स्वच्छ वस्त्र पहनाना चाहिए। गंदे और मैले वस्त्र न पहनाना चाहिए।

प्रसूतागार की आवश्यक सामग्री

चतुर स्त्रियाँ प्रसव से पूर्व प्रसव के लिये आवश्यक सामग्री जुटा लेती हैं, जिससे समय पर उन्हें तलाश करने में व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना पड़ता, और किसी कार्य में बाधा भी नहीं पड़ती।

१—एक लंबा-चौड़ा खूब कसा हुआ पलँग।

२—एक गद्दा, दरी और एक-दो कंबल या रजाई।

३—दो मोमजामे के टुकड़े, बच्चे के लिये पतले, कोमल वस्त्र।

४—बिस्तर पर बिछाने की तीन-चार चद्दरें।

५—बच्चे का पेट बाँधने के लिये पट्टी, बच्चे के शरीर पर मालिश करने के लिये मीठा, नारियल का तेल, नहाने का साबुन। बच्चे को स्नान कराने के लिये दो टब, अलमोनियम की एक बड़ी कटोरी, एक क़ैंची, बच्चे का नाल बाँधने के लिये पतला फीता, एक गज़ बायल क्लाथ, प्रसूता का पेट बाँधने के लिये तीन गज़ कपड़ा। सेफ्टी पिन बारह, रक्त पोंछने के शुद्ध कपड़े, लाइसोल एक औंस, टिंचर आयोडीन एक औंस, बोरिक रुई एक पैकेट, बोरिक पाउडर डेढ़ औंस, पानी गरम करने के लिये दो-तीन बर्तन, एक अँगीठी, एक टब।

६—प्रसूतागार में 'केरोसिन तेल' न जलाना चाहिए। इसकी जगह दीपक में सरसों का तेल जलाकर प्रकाश किया जाय। यह प्रकाश शीतल और नेत्रों के लिये उत्तम होता है।

प्रसव की तैयारी

प्रसव से पूर्व यह आवश्यक है कि चतुर, अनुभवी धात्री को बुला लिया जाय। मूर्ख दाइयों के कारण मा के प्राण संकट में पड़ जाते हैं और नवजात शिशु का जीवन ख़तरे में। इन मूर्ख दाइयों की अज्ञानता और असावधानी से स्त्रियों को अनेकों रोग लग जाते हैं, जिनसे जीवन-भर छुटकारा नहीं मिलता। प्रसव-कार्य में शुद्धता की सबसे अधिक आवश्यकता है। संक्रामक रोगों और रोगों के कीटाणुओं से रक्षा का प्रश्न बड़ा महत्त्व-पूर्ण है, परंतु मूर्ख दाइयाँ इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। तीन स्थानों से विष या रोग-कीटाणु स्त्री के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं—

(१) धात्री के हाथों या वस्त्रों से, (२) धात्री के यंत्र (चाकू, कैंची आदि) से और (३) गर्भवती के प्रसव-द्वार से।

धात्री को चाहिए कि प्रसूता के प्रयोग में आनेवाली चीज़ों और वस्त्रों को बिलकुल शुद्ध कर ले। अपने हाथों से अँगूठी या चूड़ियाँ उतार डाले। हाथों को भली भाँति साबुन से धो ले। नाख़ूनों को बिलकुल काट लेना चाहिए। जब हाथों को प्रसव-द्वार से लगाया जाय, तब उनमें 'टिंचर आयोडीन' अवश्य मल ले। चिमटी और यंत्रों को गरम पानी में उबाल लेना चाहिए।

इसके उपरांत निम्न-लिखित लोशन तैयार कर बोतलों में

रक्खे। बोतलों पर लेबिल में उसका नाम लिख दे, और नीचे लिख दे विष।

१—लाइसोल लोशन—इसमें डुबाने से हाथ चिकना होता है। यह तेल का काम देता है। दस छटाँक पानी में दो चम्मच 'लाइसोल' डालने से तैयार होता है। यह हाथ, प्रसव-स्थान और यंत्र धोने के लिये होता है।

२—बोरिक लोशन—दस छटाँक पानी में एक आँस बोरिक एसिड घोलकर बनता है। यह बच्चे का मुँह, आँख और प्रसूता का स्तन धोने के लिये होता है।

३—आयोडिन लोशन—दस छटाँक पानी में दो चम्मच टिंचर आयोडिन मिलाना चाहिए। इससे भी धुलाया जाता है।

४—कास्टिक लोशन—आधी छटाँक गुलाब-जल में ढाई रत्ती कास्टिक मिलाना चाहिए। यह बच्चे की आँखों में डालना चाहिए।

प्रसव की व्यवस्था

चतुर धात्री उदर की अवस्था से यह बतला देती है कि गर्भाशय में बालक किस दशा में है, अर्थात् बालक के पहले पैर निकलेंगे अथवा सिर। यह नियम है कि बालक का पहले सिर प्रसव-द्वार से निकलता है, और यदि गर्भाशय में बालक की स्थिति ऐसी हो कि पहले सिर न निकले, तो तुरंत ही डॉक्टरनी को बुलाना चाहिए, अथवा डॉक्टरनी न आ सके, तो धात्री को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे बालक अपनी स्वाभाविक दशा में बाहर निकले। यदि पेट के ऊपर से नीचे की ओर बचा खड़ा रहे, तो समझना चाहिए कि उसका सिर या पैर निकलेंगे। यदि वह आड़ा हो, तो हाथ पहले निकलेंगे। डॉक्टरनी को बच्चा बाहर निकलने से पूर्व बुला लेना चाहिए। सिर यदि सात-आठ मिनट तक बाहर न निकला, तो बच्चा मर जायगा। सिर का तालू मुँह से पहले निकालना चाहिए। इस कार्य में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। अधिक खींचा-तानी ठीक नहीं।

प्रथम अवस्था—जब तक गर्भाशय का द्वार न खुले, तब तक निम्न-लिखित उपचार करने चाहिए—

१. गर्भवती को पलँग पर सोना न चाहिए। घूमते रहना चाहिए।
२. काँखना न चाहिए।
३. पेशाब बार-बार करना चाहिए।
४. इस समय दूध सेवन कराना चाहिए और शीतल, हलके पदार्थ।
५. गर्भाशय को अधिक नहीं दबाना चाहिए।

द्वितीय अवस्था—गर्भाशय का द्वार खुल जाने पर—

१. अब गर्भिणी को चित या बाईं करवट, जैसे अच्छा लगे, सुला दो।

२. इस समय खाने के लिये कुछ न देना चाहिए। केवल शीतल जल।

३. जब बच्चा प्रसव हो, तो गर्भिणी को बाईं करवट सोना चाहिए। जब दर्द मालूम हो, गर्भवती को चिल्लाना चाहिए। और, धात्री को सावधानी से बच्चे का सिर निकालना चाहिए।

४. कमर और पैरों को दबाना चाहिए।

५. सिर निकलते ही बोरिक लोशन में भिगोई रुई से आँख और पलक पोंछना चाहिए। एक कपड़े से गला, नाक साफ़ करो।

६. नाल बच्चे के सिर के सामने हो। वह शरीर में लिपटी न हो। नाभि से चार अंगुल छोड़कर नाल को एक रेशमी धागे से बाँध दो, और पहली गाँठ से चार अंगुल पर फिर बाँध दो। फिर दोनो गाँठों के बीच से तेज़ कैंची से नाल को काट दो। नाल के कटे हुए हिस्से पर थोड़ा-सा बोरिक पाउडर भरकर, ऊपर साफ़, मुलायम कपड़ा रखकर पट्टी से बाँध देना चाहिए। "बच्चे के नाल में एक कण कस्तूरी और ज़रा-सा राय सेंदुर भरकर सेंक देने से सदा के लिये बालक पित्त-प्रधान प्रकृति का हो जाता है, और कफ या बादी उसे जीवन में कम सताते हैं*।"

७. जब बच्चा पृथ्वी पर आ जाय, तो उसे रोना चाहिए। यह स्वाभाविक है।

यदि बच्चा रोए न, तो यह समझना चाहिए, उसका श्वास रुक गया है।

* देखिए, 'सफल माता' चाँद-प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ८६-९०।

"जिस बच्चे का शरीर सफ़ेद और पीला पड़ जाय, श्वास लेने की कोई चेष्टा न हो, दबाने पर नाल भली भाँति धुक-धुक गति से न चले, हाथ-पाँव निकम्मे हो जायँ, और मुँह न हिले, तो इस दशा में बच्चा प्रायः बचता नहीं। यदि बच्चे का रंग नीला हो जाय, श्वास लेने की चेष्टा करे, तब कोई प्रसूता का पेट पकड़ ले, बच्चे के गले में उँगली देकर घड़घड़ी हटा दे, अथवा पैरों को पकड़कर सिर को नीचा करके कुछ थोड़ा झुका रक्खे, यह करके पीठ पर कई चपतें लगा दे और आँख-मुँह पर ठंढे पानी का छींटा दे। इस प्रकार करने से बच्चा साँस लेने लगेगा, रो पड़ेगा*।"

८. प्रसव के बाद मा को पलँग पर शांति-पूर्वक लिटा देना चाहिए। बच्चा पैदा हो जाने के एक या डेढ़ घंटे बाद फूल, खेड़ी, आँवल या आयर निकलता है। इसमें रक्त-मल इत्यादि लगा रहता है। जब तक न गिरे, पेट दबाए रखना चाहिए। इस प्रकार दबाए रखने से वह धीरे-धीरे पेट के नीचे उतर आएगा। इस समय यह समझना चाहिए कि आँवल गर्भाशय से अलग हो गया। आँवल को बड़ी साव-धानी से पूरा निकाल देना चाहिए। इसका थोड़ा भी अंश भीतर न रह जाय। आँवल के निकल जाने के बाद गर्भाशय सिकुड़ जाता है। अब उसकी सफ़ाई करके पेट पर साफ़ वस्त्र की पट्टी बाँध देनी चाहिए।

९. प्रसूता को अब आराम करने देना चाहिए।

१०. प्रसव-द्वार फट तो नहीं गया है, इसकी जाँच करनी चाहिए। आधा अंगुल से अधिक फट गया हो, तो डॉक्टरनी को बुलाकर सी देना चाहिए।

पूर्ण विश्राम

प्रसूता को दस-पंद्रह दिन तक पलँग पर चित लेटे रहना चाहिए। टट्टी-पेशाब के लिये भी पलँग पर प्रबंध किया जाय, तो उत्तम है। इस समय शरीर को जल-वायु से बचाना चाहिए। प्रसूतागार में धुआँ न करना चाहिए। हवा की शुद्धि

*देखिए, 'शिशु-मंगल' लेखक, डॉ० सुंदरीमोहनदास एम्० बी०; प्रकाशक, प्रेमानंद योगानंददास, रामादीनेंद्र स्ट्रीट, कलकत्ता, पृष्ठ ५४

के लिये धूप-बत्ती जलानी और हवन करना चाहिए। माता को अपनी शक्ति प्राप्त करने के लिये कम-से-कम दो महीने लग जाते हैं। इसलिये इस समय में उसे अधिक न घूमना-फिरना चाहिए, और न परिश्रम ही करना चाहिए।

प्रसूता का भोजन

प्रसव के पहले दिन प्रसूता को कोई चीज खाने के लिये न देनी चाहिए। प्रसव के बाद पेट में दर्द होता है, इससे रक्त का अंश और आँवल के जो टुकड़े रह जाते हैं, वे बाहर निकल जाते हैं। गर्भाशय को धीरे-धीरे मलना चाहिए। मल-त्याग के समय काँखना न चाहिए। इससे जरायु हट जाने का डर है। प्रसव के दस-बारह घंटे बाद पेशाब न आवे, तो डॉक्टरनी को दिखलाना चाहिए।

प्रसव के बाद चार दिनों तक गाय का दूध देना चाहिए। अन्न बिलकुल न दिया जाय।

इसके बाद पाँच दिन तक दूध और साबूदाना देना चाहिए। इसके बाद दाल का पानी, पतली खिचड़ी और भुने हुए गेहूँ का पतला दलिया देना चाहिए। पीने के लिये अजवायन का औटा हुआ पानी देना चाहिए। दूध औटाते समय उसमें मुनक्के या सोंठ डाल दी जाय, तो उत्तम है। भोजन में हल्दी का चूर्ण मिलाकर खाना चाहिए। दो मास तक भोजन सादा, पचनशील और हलका दिया जाय।

स्नान और शुद्धि

प्रसव के बाद—एक या दो दिन बाद—प्रसूतागार की भली भाँति सफाई की जाय। फर्श, दीवार आदि साफ किए जायँ। प्रसूता के वस्त्र भी साफ किए जायँ। कपड़े बदलवा देना चाहिए। परंतु तीन या चार दिन बाद स्नान न कराया जाय। डॉ० सुंदरीमोहनदास एम० बी० ([illegible] चित्तरंजन अस्पताल, कलकत्ता) की यह राय है कि 'चौदह दिन बाद तथा थोड़े गरम जल से स्नान कर सकती है। एक मास तक इसी तरह गरम जल से स्नान करे। गृह के अंदर ही देह [illegible]

और मस्तक ठंडे जल से धोकर पोछ लेना चाहिए। कमरे के बाहर स्नान न करने दे।"

प्रथम हफ्ते के बाद हाथ-पाँव, पीठ-कमर मलकर सेंकने चाहिए। पलँग पर पड़े-पड़े हाथ-पांव एक बार समेटकर फिर फैलाना भी व्यायाम है।

नवजात शिशु

नवजात शिशु का शरीर अत्यंत कोमल होता है। इसलिये उसकी रक्षा के लिये अत्यंत सावधानी की आवश्यकता है।' प्रसूता स्वयं दुर्बल होती है, वह पूरी तरह बालक की देख-भाल और सँभाल नहीं कर सकती, और न एकदम सारा भार उस पर छोड़ देना चाहिए। प्रसूता के पास दो-तीन चतुर स्त्रियों को उसकी देख-भाल के लिये हर समय उपस्थित रहना चाहिए।

शारीरिक शुद्धता

सबसे पहले बालक के शरीर की भली भाँति सफाई करनी चाहिए। उसके शरीर पर मल चिपका रहता है। इसलिये केवल-मात्र पानी डालने से काम नहीं चलता। उसके शरीर से समस्त मल को साफ कर देना चाहिए। स्नान कराते समय यह ध्यान रक्खा जाय कि नाल न भीगने पावे। यदि नाल पानी में न भीगने पावे, तो पाँच-सात दिन में गिर जाता है। बच्चे को बंद कमरे में गरम पानी से स्नान कराना चाहिए। उसे हवा का झोंका न लगने पावे। यदि अधिक ठंढ या बदली हो, तो शरीर में तेल लगाकर पोछ देना चाहिए। कहीं-कहीं ऐसा भी रिवाज है कि नवजात बालक को बेसन के उबटन से मालिस कर स्नान कराया जाता है। यह अच्छा रिवाज है। इससे बालक का शरीर साफ हो जाता है, और त्वचा पर लोम भी टूट जाते हैं। पीपल या वट की छाल को पानी में औटाकर उस पानी से स्नान कराया जाना चाहिए।

शिशु की पोशाक

स्नान के बाद उसे भली भाँति पोछकर शुद्ध पलँग पर कोमल-मुलायम गद्दे पर कपड़ा ओढ़ाकर सुला देना चाहिए। जब तक

बच्चे के कपड़े तैयार न हों, तब तक उसे वैसे ही कपड़ों से ढककर रखना चाहिए। बच्चे को नंगा कभी न रक्खा जाय। बच्चे के कपड़े साफ, पतले और मुलायम तथा ढीले हों। जाड़ों में उसके हृदय-प्रदेश और पैरों को गरम रखना चाहिए। फ़लालेन के कपड़े अच्छे होते हैं। ऊन के कपड़ों से शरीर में चुभने का भय रहता है।

निद्रा

नवजात शिशु को नींद अधिक आती है। बच्चे को जब भूख लगती है, तब वह जग जाता है, अन्यथा सोता रहता है। अथवा उसे कोई कष्ट हो, सरदी लगे या गरमी लगे, तो वह रोता है। परंतु मा को उसकी देख-भाल रखनी चाहिए। धुएँ से बच्चे की आँखों की रक्षा करनी चाहिए। दीपक सरसों के तेल का जलाया जाय, और ऐसी जगह रक्खा जाय, जिससे बच्चे की आँखों के सामने प्रकाश न पड़े। झुला-झुलाकर बच्चे को सुलाने की आदत न डालनी चाहिए, और न सुलाने के लिये चुसनी मुँह में लगाई जाय। चुसनी गंदी होती है, और उससे बालक के शरीर में गंदे रोग के कीटाणु प्रवेश कर सकते हैं।

पेट की शुद्धता

पहले दो दिन बच्चे को साफ़ दस्त नहीं आता। मल दूषित और स्निग्ध होता है। गर्भाशय में बालक के उदर में जो मल जमा हो जाता है, वह इन दिनों में निकल जाता है। जब मल निकल जाता है, और वह मा के स्तन का दूध पीने लगता है, तब दूसरे दस्त का रंग हल्दी-जैसा पीला हो जाता है। प्रसव के पाँच-सात घंटे बाद पहला दस्त होता है। पाँच-सात दिन में दस्त का रंग अंडे की सफ़ेदी-जैसा हो जाता है। यदि बच्चा नीरोग हो, तो दिन में तीन-चार बार दस्त होता है। बालक को शहद चटाना चाहिए, इससे दस्त साफ़ आता है। दूध में गुड़ डालकर पिलाने से भी साफ़ दस्त हो जाता है। श्रीमती सुशीलादेवी का यह कथन है कि बच्चे को निम्न-लिखित चीज़ें चटाना चाहिए—

३. शहद में सोना घिसकर।

४. चावल-भर कपड़छन किए हुए आँवले के चूर्ण में आधा चावल स्वर्ण-भस्म, घी और शहद मिलाकर।

मा के स्तनों में जब तक दूध न आवे, तब तक उपर्युक्त में से कोई एक नुस्खा दिन में दो बार चटाना चाहिए ❀।

शरीर की मालिश

प्रसव के पंद्रह-बीस दिन बाद बालक के शरीर में सरसों के तेल की मालिश करके धूप में लिटा देना चाहिए। मस्तक और सिर पर धूप न लगे। यह स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है। "सरसों या तिलों के तेल को थोड़ी देर धूप में रख दे, तो खाद्योज नं० ४ (Vitamin D.) तैयार हो जायगा। शरीर में तेल लगाकर धूप खाना अच्छा है। शिशुओं के शरीर पर तेल मलकर उनको थोड़ी देर धूप में लिटाना बहुत हितकारी है। क्योंकि इस विधि से खाद्योज नं० ४ उनके शरीर में पैदा हो जाता है †।"

शिशु का सर्वोत्तम भोजन मा का दूध है

यदि मा पूर्ण स्वस्थ है, और उसका दूध विकार-रहित है, तो मा को अपने स्तन का दूध बालक को पिलाना चाहिए। प्रसव के प्रथम दो दिन मा के स्तनों से शुद्ध दूध नहीं आता। दो दिन तक स्तनों से लसदार दूध निकलता है। प्रकृति ने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि जैसे ही शिशु जन्म लेता है, उसी समय उसके भोजन की भी व्यवस्था तैयार मिलती है। इस दूध को दो दिन तक शिशु को छ-छ घंटे बाद पिलाना चाहिए। यह लसदार दूध हानिकर नहीं होता।

प्रायः तीसरे दिन स्तनों में शुद्ध दूध आ जाता है, अतः तीसरे दिन स्तन का शुद्ध दूध मिलाना चाहिए।

❀ देखिए 'सफल माता'; लेखिका, श्रीमती सुशीलादेवी, पृष्ठ ९९-१००।

† देखिए 'स्वास्थ्य और रोग'; लेखक, डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा, इलाहाबाद ला-जरनल प्रेस, इलाहाबाद; सन् १९३३, पृष्ठ १५०।

खाद्योज नं० ४ (Vitamin NO. 4) अस्थियों और दाँतों के लिये आवश्यक है। इसके अभाव में शिशु को 'रिकेट्स' रोग हो जाता है। अस्थियाँ कोमल हो जाती हैं। शिशु चिड़चिड़ा हो जाता है, नींद कम आती है, बालक शीघ्र चलने-फिरने में अशक्त रहता है, क़ब्ज़ रहता है, दाँत देर में निकलते हैं, और हाथ-पैरों की अस्थियाँ टेढ़ी हो जाती हैं।

स्तन-पान के नियम

यदि बालक प्रथम दिन स्तन खींच न सके, तो आधी छटांक पानी में एक चम्मच मिसरी या थोड़ा शहद मिलाकर दो-तीन चम्मच छः-छः घंटे बाद देना चाहिए। दूसरे दिन चार-चार घंटे बाद दूध पिलावे। तीसरे दिन से तीन मास तक तीन-तीन घंटे बाद प्रातः दस बजे से रात तक छः बार और रात के दस बजे से प्रातः छः बजे तक एक बार अर्थात् कुल सात बार स्तन-पान कराना चाहिए। जब बच्चा रोए, तब उसके मुँह में स्तन दे देना ठीक नहीं। इससे बालक को अजीर्ण और पेट के रोग हो जाते हैं। एक स्तन दस मिनट तक पिलाना चाहिए। बच्चा स्तन को मुँह में लगाकर न सो जाय, इस बात का मा को सदैव ध्यान रखना चाहिए। इससे कभी-कभी सोती मा के स्तन के दबाव से बच्चा मर जाता है। स्तन और मुख भी अशुद्ध हो जाता है।

मा को बैठकर बच्चे को गोद में लेकर स्तन-पान कराना चाहिए। एक हाथ से उसका सिर पकड़ ले, और दूसरे से स्तन मुँह में दे। स्तन-पान कराने के पूर्व साफ़ जल से स्तनों को धो लेना चाहिए। लेटे-लेटे कभी दूध न पिलाना चाहिए।

साधारणतया स्तन-पान निम्न-लिखित नियमानुसार कराना चाहिए—

आयु	दिन में प्रातः छः बजे से रात के दस बजे तक	कितने घंटे बाद	रात में दस बजे से सबेरे छः बजे तक
प्रथम दिन	चार बार	छः-छः घंटे बाद	एक बार
द्वितीय दिन	छः बार	चार-चार घंटे बाद	एक बार
तीसरे दिन से तीन मास तक	सात बार	तीन तीन घंटे बाद	एक बार
तीन मास के बाद	पाँच बार	चार-चार घंटे बाद	

*

मा के दूध के अभाव में बकरी का दूध उत्तम है

यदि किसी कारण मा का दूध कम हो, अथवा उसका दूध बिलकुल

* देखिए 'शिशु-मंगल', पृष्ठ ६२-६३।

ही प्राप्त न हो, तो बकरी का दूध सर्वोत्तम है। बकरी के दूध में पानी और शक्कर मिलानी चाहिए, और जिस चम्मच में ढाई तोला दूध आवे, उसके परिमाण से दूध निम्न-लिखित प्रकार पिलावे—

आयु	दिन में कितनी बार	कितनी देर बाद	एकबार में कितना	चौबीस घंटे में कितना	गोदूध की मात्रा	पानी की मात्रा
तीसरे दिन	६ बार	३-३घंटे	२ चम्मच	१२चम्मच	३ चम्मच	६ चम्मच
चौथे दिन	,,	,,	३ ,,	१८ ,,	६ ,,	१२ ,,
पाँचवें दिन	,,	,,	४ ,,	२४ ,,	१० ,,	१४ ,
छठे दिन	,,	,,	५ ,,	३० ,,	१५ ,,	१५ ,,
७ से १४ वें दिन	,,	,,	६ ,,	३६ ,,	२२ ,,	१४ ,,
तीसरे सप्ताह	,,	,,	७ ,,	४२ ,,	२८ ,,	१४ ,,
चौथे सप्ताह	,,	,,	८ ,,	४८ ,,	३६ ,,	१२ ,,*

निम्न-लिखित विधि से गोदूध मा के दूध के समान बनाया जा सकता है—

गाय का दूध— एक छटाँक
कॉड लिवर ऑयल इमलसन—साठ बूँद या एक चम्मच
चीनी— एक चम्मच
पानी— डेढ़ छटाँक
चूने का पानी— एक चम्मच

दूध को रखने का नियम

पहला उफान आते ही दूध को ठंडे पानी पर रखे। उसी समय कुछ गुनगुना दूध पिलावे। जब दूध बच रहे, तो उसे फिर अँगीठी पर न रखना चाहिए। इससे उसमें रोग-कीटाणु पैदा हो जाते हैं। जाड़े के दिनों में दुग्ध-पात्र को ठंडे जल के बर्तन पर रख दे, और गरमियों में दूध के बर्तन के चारो ओर भीगा कपड़ा लगाकर पानी के पात्र में रख दे। ऐसा करने से दूध अच्छा रहेगा। बोतल में पिया हुआ दूध बचे, तो फेंक दे।

* देखिए 'शिशु-मंगल', पृष्ठ ६२-६३।

बच्चे के दूध को मक्खियों से रक्षा करनी चाहिए। दूध पिलाने के पूर्व और बाद में दूध की शीशी को भली भांति साफ कर लेना चाहिए।

शिशु को स्तन-पान कब न कराना चाहिए ?

१. अग्नि के पास से उठने के बाद। आध घंटे बाद पिलाने में हानि नहीं है।
२. बच्चे को उबटन लगाने या सेंकने के बाद। आध घंटे बाद पिलाया जा सकता है।
३. स्नान के पूर्व या उपरांत। आध घंटे पहले या बाद में पिलाया जाय।
४. जब मा को जुकाम हो, पेट में पीड़ा हो।
५. जब मा को हैजा, संग्रहणी, यक्ष्मा और चेचक आदि कोई संक्रामक रोग हो।
६. पेट में कोई भीतरी फोड़ा हो जाय।
७. स्तनों में कोई रोग हो जाय।

शिशु-चर्या
(पाँच मास से कम आयु तक)

प्रातःकाल ६ बजे—स्तन-पान कराके बिस्तर पर सुला दिया जाय।
८-१५ बजे—संतरे का रस।
८-३० बजे—स्नान। स्नान से पूर्व कुछ देर तक बच्चे को नग्न करके बिस्तर पर अपने हाथ-पैर चलाने देना चाहिए।
९ बजे—स्तन-पान।
९-२० बजे - स्तन-पान तक धूप में सुलाना चाहिए, सोने के बाद थोड़ा जल पिलाना चाहिए।
१२ बजे—स्तन-पान।
१२-२० बजे—धूप में सुलाना। यदि अधिक गरमी हो, तो नहीं सुलाना चाहिए। सोने के बाद जल पिलाना चाहिए।
दोपहर ३ बजे—स्तन-पान।
३-२० बजे—गृह से बाहर वायु में।
५-१५ बजे—उसके कपड़े बदल देना चाहिए।

५-४५ बजे—संतरे का रस।

शाम ६ बजे—स्तन-पान।

६-२० बजे—सुला देना चाहिए। खिड़कियाँ खुली रहें। दीपक बुझा दिया जाय।

रात १० बजे—स्तन-पान।

जब बालक का जन्म हो, उसी समय से माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वह बालक में अच्छे संस्कारों का प्रभाव डालें। शैशव-काल से ही वह अपने स्वभाव को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है। अतः मा को चाहिए कि वह घड़ी में देखकर ठीक समय दूध पिलावे। बच्चे के सोने का समय भी नियमित होना चाहिए। यदि मौसम ठीक और अनुकूल हो, तो कमरे के बाहर धूप में सुलाया जाय। तेल की मालिश करके धूप में सुलाना लाभप्रद होता है।

बालक को पलँग पर लिटाए रखना चाहिए। उसके रोने पर तुरंत ही गोद में ले लेना अथवा उसे स्तन-पान कराना ठीक नहीं। माता-पिता को प्रतिदिन नियमित रूप से बच्चे के साथ खेलना चाहिए। बच्चे के लिये कुछ मात्रा में रोना भी ज़रूरी है। इसलिये जब बच्चा रोवे, तभी उसे शांत करने की चेष्टा न करनी चाहिए, बच्चे के रोने का कारण मालूम करना चाहिए।

स्वस्थ बालक की नींद का नक़्शा*

आयु	रात-दिन २४ घंटे	दिन में	रात में
पहला दिन	२२ घंटे	निश्चय नहीं	निश्चय नहीं
एक सप्ताह तक	२१ ,,	,,	,,
दूसरे सप्ताह से महीने के अंत तक	१६-२० ,,	६-१० घंटे	१० घंटे
दूसरे मास से चौथे तक	१८-१६ ,,	८-६ ,,	१० ,,
पाँचवें-छठे महीने	१७-१८ ,,	७-८ ,,	१० ,,

* देखिए 'भाई के पत्र', पृष्ठ २६४।

आयु	रात-दिन २४ घंटे	दिन में	रात में
नौ मास तक	१५-१६ घंटे	५-६ घंटे	१० घंटे
बारह मास तक	१४-१५ ,,	४-६ ,,	९ ,,
डेढ़ वर्ष तक	१२-१३ ,,	३-४ ,,	९ ,,
दो वर्ष तक	११-१२ ,,	२-३ ,,	९ ,,
तीन वर्ष तक	१०-११ ,,	१-२	९ ,,
पाँच वर्ष तक	१० ,,	—	१० ,,
आठ वर्ष तक	९-९½	—	९-९½,,

जो बालक पर्याप्त घंटों तक न सोए, तो यह समझ लेना चाहिए कि उसे कोई शारीरिक कष्ट है। बालक को कदापि भय दिखलाकर न सुलाना चाहिए। बच्चों को भूत-प्रेत का भय दिखलाना मानो उन्हें कायर और दुर्बल बनाना है। अनेकों अज्ञान माताएँ अपने बच्चों को सुलाने के लिये अफ़ीम खिला देती हैं; परंतु यह आदत बड़ी हानिकर है। मा यह समझती है कि बच्चा सो गया, पर वह नशे के कारण सुस्त पड़ा रहता है। अफ़ीम से उसे क़ब्ज़ हो जाता है, और फेफड़े भी कमज़ोर हो जाते हैं।

आवश्यक बातें

१. बालकों को डेढ़ वर्ष के बाद दूध न पिलाना चाहिए।

२. गर्भवती को अपने बालक को स्तन-पान न कराना चाहिए।

३. बालकों को गंदगी और पेशाब-पाख़ाने में न पड़े रहने देना चाहिए। उन्हें तुरंत ही सफ़ाई से सुला देना चाहिए।

४. बच्चों को गहना न पहनाना चाहिए। हाँ, गले में एक पतली हँसली पहना दी जाय। इससे गले की हड्डी नहीं उतरती।

५. बच्चों को हर समय गोद में चिपटाकर न रक्खा जाय। सिर्फ़ स्तन-पान कराके गोद में लिया जाय।

१२

आदर्श संतान-निग्रह

शांति-निवास, आगरा
१७ मई, १९३७

प्रिय बहन शांता,

आज तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपने इस पत्र में पूछा है—"संतान-निग्रह (Birth Control) क्या है? क्या पति-पत्नी को संतान-निग्रह की आवश्यकता है? और, यदि पति-पत्नी के लिये संतान-निग्रह आवश्यक है, तो उसके साधन क्या हैं? मैंने 'हरिजन' पत्र में महात्मा गांधीजी के लेख इस विषय पर पढ़े हैं। उनकी सम्मति में पति-पत्नी को केवल-मात्र संतानोत्पत्ति के लिये संभोग करना चाहिए। आदर्श संतान-निग्रह ब्रह्मचर्य है। क्या तुम्हारे विचार उपर्युक्त विचारों से मेल खाते हैं? तुम्हारी इस विषय में क्या सम्मति है? अपने पत्र में विस्तार-पूर्वक इस विषय पर प्रकाश डालने की कृपा कीजिए।"

संतान-निग्रह

'मातृत्व'-प्रकरण में मैंने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि गर्भाधान किस प्रकार होता है। गर्भाधान में पुरुष के वीर्य के शुक्रकीट का स्त्री के डिंब से संयोग होता है। जब इनका संयोग हो जाता है, तो गर्भ-स्थिति हो जाती है। संतान-निग्रह का तात्पर्य यह है कि किसी उपाय से शुक्रकीट और डिंब का संयोग न हो। दूसरे शब्दों में जब पति-पत्नी संतानोत्पत्ति की इच्छा करें, तभी शुक्रकीट और डिंब का संयोग हो, अन्यथा उनका संयोग न हो। अज्ञ स्त्री-पुरुष 'गर्भाधान, और 'संतानोत्पत्ति' को 'ईश्वर की माया' मानकर संतोष कर लेते हैं; परंतु 'संतान-निग्रह' के समर्थकों का यह दावा है कि गर्भाधान 'ईश्वर की माया' नहीं वह शुक्रकीट और डिंब के संयोग का फल है। अतः संतानोत्पत्ति पर स्त्री-पुरुष का नियंत्रण हो सकता है। संतानोत्पत्ति स्त्री-पुरुष के नियंत्रण में है। परंतु इसके लिये समुचित साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

संतान-निग्रह अनेक दृष्टियों से आवश्यक समझा जाता है।

१. राजनीतिक—सैनिकवादी (Militarist) राष्ट्रों को यह धारणा है कि देश-रक्षा के लिये बलवान्, हृष्ट-पुष्ट और वीर सैनिकों की आवश्यकता है। अधिक संतान-वृद्धि का परिणाम यह होगा कि संतान दुर्बल, कायर और निकम्मी पैदा होने लगेगी। इसलिये संतान-निग्रह के साधनों का प्रयोग कर देश-रक्षा के लिये बलवान् योद्धा, वीर सैनिक उत्पन्न करने चाहिए। परंतु इस विचार के प्रति उग्रराष्ट्रवादी देशों में अब प्रतिक्रिया पैदा हो गई है, और इटली, जापान, जर्मनी आदि देशों ने 'संतान-निग्रह' के स्थान में अधिक संतान-वृद्धि करने के लिये आंदोलन शुरू कर दिया है। इटली, जर्मनी और जापान में राज्य (State) की ओर से अविवाहित स्त्री-पुरुषों के विवाह कराए जाते हैं, और उन्हें राजकोष से विवाहों के लिये धन दिया जाता है। जो माताएँ अधिक संतान उत्पन्न करती हैं, उन्हें पुरस्कार दिए जाते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त देशों में संतान-वृद्धि के लिये बड़ी-बड़ी योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। आगामी विश्व-युद्ध के लिये अधिक जन-संख्या की बड़ी आवश्यकता पड़ेगी। इसी विचार से ऐसा किया जा रहा है*।

अतः विश्व-युद्ध के अवरोध के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश की जन-संख्या उतनी हो, जितनी उस देश के क्षेत्रफल में सुविधा पूर्वक गृह और भोजन-वस्त्र उपलब्ध कर सके।

२. सामाजिक—संतान-निग्रह की सामाजिक दृष्टि से भी अधिक आवश्यकता है। समाज के मंगल के लिये यह नितांत आवश्यक है कि जन-संख्या पर प्रतिबंध रक्खा जाय। आजकल संसार के पूँजी-वादी राष्ट्रों में बेकारी भयंकर रूप में मौजूद है—आर्थिक संकट से जन-साधारण पीड़ित हैं। इसका एक परिणाम तो यह है कि जो व्यक्ति या जाति धनी और संपन्न होते हैं, वे संतान-निग्रह के उपायों

---

* जापान, जर्मनी, इटली आदि देशों का क्षेत्र-फल कम है, और इनमें जन-संख्या की अधिक वृद्धि का आंदोलन किया जा रहा है। इसका अवश्यभावी परिणाम यह होगा कि ये देश अपनी जन-संख्या को बढ़ाने के लिये नए-नए उपनिवेशों या देशों को प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे, और उनका यह प्रयत्न युद्ध को प्रोत्साहन देगा।—लेखक

द्वारा संतान कम पैदा करने लगते हैं, और जो लोग निर्धन हैं, मज़दूर और ग़रीब कृषक हैं, वे संतान-निग्रह के आधुनिक उपायों को प्राप्त नहीं कर सकते। फलतः उनकी संतान-वृद्धि बड़े आश्चर्यजनक रूप से होने लगती है। इंगलैंड की बर्थ-रेट कमेटी (Birth Rate Committee) की रिपोर्ट से विदित होता है कि जहाँ प्रतिहज़ार शिक्षकों के ९५, पादरियों के १०१, डाक्टरों के १०३, लेखकों के १०४ संतानें होती हैं, वहाँ साधारण मज़दूरों के प्रतिहज़ार ४३८ संतानें पैदा होती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में अयोग्य और निकृष्ट श्रेणी के लोगों की संख्या अधिक होती जाती है। समाज का जीवन-निर्वाह का आदर्श (Standard of Living) गिरता जाता है।

३. स्वास्थ्य—स्वस्थ मातृत्व और राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दृष्टि से भी संतान-निग्रह आवश्यक है। ग़रीब श्रेणी के स्त्री-पुरुषों को संतान-निग्रह की सबसे अधिक आवश्यकता है। जो स्त्री प्रायः बीमार रहती है, पौष्टिक भोजन के अभाव में जिसका शरीर दुर्बल है, बार-बार गर्भ-धारण से जिसकी शक्ति क्षीण हो गई है, और गर्भाशय-संबंधी रोग या दुर्बलता पैदा हो गई है, जिसे अस्वस्थ वातावरण में जीवन बिताना पड़ता है, और इस पर भी गृह के सब काम-काज करने पड़ते हों, ऐसी स्त्री प्रति दूसरे वर्ष संतान पैदा करे, तो यह उसके लिये घातक ही सिद्ध न होगा; प्रत्युत भावी संतान के लिये भी हानिकर सिद्ध होगा। इस प्रकार संतान-निग्रह राजनीतिक, सामाजिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य—इन तीनों दृष्टियों से उपयोगी, वांछनीय और स्वास्थ्यप्रद है।

संतान-निग्रह कब ?

निम्न-लिखित दशाओं में पति-पत्नी को संतान-निग्रह करना आवश्यक है—

१. विवाह के उपरांत तुरंत ही गर्भाधान वांछनीय नहीं है। विवाह के उपरांत एक या दो साल के बाद गर्भाधान किया जाय।

२. एक संतान उत्पन्न हो जाने के बाद तुरंत ही गर्भ-स्थिति हानिकर है। गर्भाधान के बाद मा की शक्ति बच्चे के निर्माण में व्यय होती है, और प्रसव के बाद भी उसकी अधिक शक्तियाँ बालक के पोषण में लगती हैं, इसलिये प्रसव (Childbirth) के कम-से कम एक साल बाद गर्भाधान किया जाना चाहिए।

३. यदि पति या पत्नी को दमा, मृगी, पागलपन और कोढ़ आदि कोई पैत्रिक रोग हो, तो गर्भाधान न होना चाहिए।

४. यदि पति या पत्नी को वीर्य, गर्भाशय अथवा जननेंद्रिय-संबंधी कोई संक्रामक रोग हो, तो संतानोत्पत्ति न की जाय।

५. जब संतान पैदा होने के बाद ही वह लगातार मृत्यु को प्राप्त हो जाय।

६. जब पति-पत्नी की आर्थिक स्थिति इतनी उत्तम न हो कि वे अपनी संतानों का भली भाँति पोषण कर सकें और उन्हें शिक्षित बना सकें।

संतानोत्पत्ति के निग्रह के साधन

इसमें संदेह नहीं कि हमारे देश में संतान-निग्रह की विशेष आवश्यकता है। एक सामान्य व्यक्ति से लेकर महात्मा गांधी तक का यह विचार है कि संतान-निग्रह आवश्यक है। परतंत्र भारत में अनावश्यक जन-वृद्धि स्वाधीनता में बाधक है। स्वस्थ, नीरोग और बलिष्ठ संतानों की भारत को आवश्यकता है। दुर्बल, क्षीण-काय, अस्वस्थ और कायर संतान की देश को आवश्यकता नहीं। संतान-निग्रह की आवश्यकता को सभी अनुभव करते हैं; परंतु संतानोत्पत्ति के निरोध के साधनों के संबंध में दो प्रकार के मत पाए जाते हैं।

१. आत्मसंयम—पहला पक्ष महात्मा गांधी का है। उनकी सम्मति में संभोग का एकमात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिये एक प्रकार से नई खोज है।

"इस नियम को जानता तो मैं पहले से था, लेकिन जितना चाहिए, उतना महत्त्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभी तक मैं इसे खाली पवित्र इच्छा-मात्र समझता था। लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूँ कि यदि इसके महत्त्व को पूरी तरह मान लिया जाय, तो इसका पालन कठिन नहीं*।"

'मैं यह मानता हूँ कि कृत्रिम संतति-निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करनेवालों में जो सबसे अधिक बुद्धिमान् हैं, वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही मर्यादित रखना चाहते हैं, जो संतानोत्पत्ति से बचने

* देखिए, 'एक युवक की कठिनाई' हरिजन-सेवक (देहली) २४ अप्रैल, १९३६

दूर अपनी और अपने पतियों की विषय-वासना तृप्त करना चाहती हैं। लेकिन, मेरे ख़याल से, मानव-प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसे तृप्त करना मानव-कुटुंब की आध्यात्मिक प्रगति के लिये घातक है ७।"

महात्माजी की सम्मति में संतान-निग्रह के लिये अमोघ साधन है आत्म संयम (Self control)। संक्षेप में अपना विचार यह है कि पति-पत्नी को केवल संतान पैदा करने की इच्छा से संभोग करना चाहिए। संतान की इच्छा हो, तब पति-पत्नी संभोग करें, और इसके उपरांत वे ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहें। दूसरे शब्दों में विषय-वासना की पूर्ति महात्माजी की दिव्य दृष्टि में, 'अस्वाभाविक' है, और है 'आध्यात्मिक प्रगति के लिये घातक'।

२- कृत्रिम साधनों का प्रयोग—गांधीजी के उक्त विचार के पोषक भारत में शायद दो एक आध मिलेंगे। परंतु भारत में अधिक संख्या संतति निग्रह के निमित्त कृत्रिम साधनों के समर्थकों की है। इस-पक्ष के लोगों का विचार है कि काम-वासना दांपत्य जीवन की एक महत्त्व-पूर्ण और जीवन-दायिनी शक्ति है। काम-वासना का विवाहित जीवन से वैसा ही घनिष्ठ संबंध है, जैसा भारत में पति-पत्नी-संबंध। दांपत्य जीवन में काम-वासना की संतुष्टि स्वास्थ्यकर, हितकर और आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत विवाहित जीवन की एक प्रमुख विशिष्टता है। पति-पत्नी की काम-वासना की पारस्परिक पूर्ण तृप्ति से उनमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सहयोग और सामंजस्य (Harmony) का प्रादुर्भाव होता है।

महात्मा गांधी का आदर्श अशक्य है!

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि महात्मा गांधीजी आज विश्व की विभूति हैं—सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हैं। भारतवर्ष में महात्मा गांधी को असंख्य नर-नारी बड़ी श्रद्धा और भक्ति से पूजा करते हैं। उनके विचारों का जनता पर जादू का-सा प्रभाव पड़ता है।

मेरे हृदय में महात्मा गांधीजी के लिये असीम श्रद्धा है। मैं उन्हें मानव नहीं, एक देव पुरुष मानती हूँ। वे साधारण मानव से बहुत ऊँचे उठे हुए हैं। उनके आचार-विचार और भावनाएँ, मानवीय आदर्शों के श्रेष्ठ नमूने हैं। महात्मा गांधी का भारतीय जनता पर

७ देखिए, 'सुधारक बहनों से' हरिजन-सेवक (देहली) २ मई, १९३६

सबसे अधिक प्रभाव है, परंतु फिर भी उनके स्त्री-पुरुष-संबंधी विचारों से भारत के शिक्षित वर्ग के व्यक्ति सहमत नहीं।

मेरा विचार तो यह है कि गांधीजी का दांपत्य जीवन का आदर्श संसार के औसत पति-पत्नी के लिये अशक्य है। स्वस्थ पति-पत्नी, जिनका शरीर यौवन के पूर्ण विकास से दीप्तिमान् है, जिन्हें अपने जीवन को मंगलमय बनाने के आधुनिक उपकरण और सामग्री उपलब्ध हैं, और जिनमें परस्पर प्रेमाकर्षण भी है, अपने दांपत्य जीवन में कब तक लाख चेष्टाएँ करने पर भी, संतान की इच्छा के अवसर को छोड़, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर सकेंगे? क्या ऐसे युवक पति-पत्नी से यह आशा करना दुराशा-मात्र नहीं कि वे विवाह के बाद ब्रह्मचारी बनकर रहेंगे—आठो प्रकार के मैथुनों से बचे रहेंगे, और इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे परस्पर प्रेम-पूर्वक अपना जीवन बितावेंगे। जब उन्हें संतान की इच्छा होगी, तब केवल एक-दो बार वे संभोग करेंगे।

जिन पति-पत्नी में परस्पर सच्चा प्रेम होता है, उनके जीवन में वर्ष में ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब उनकी प्रेम-भावना (Emotion of Love) अपनी अभिव्यक्ति के लिये उनके शरीरों में एक ऐसी विद्युत्-शक्ति पैदा कर देती है; जिसके प्रभाव से उनमें शरीर-संयोग की इच्छा बलवती हो जाती है। ऐसे अवसरों पर उनसे आत्मसंयम की आशा करना दांपत्य मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान के मौलिक सिद्धांतों के प्रति अज्ञता का परिचय देना है।

संतान-निग्रह-आंदोलन की विश्व-विख्यात प्रचारिका श्रीमती मारगेरेट सैंगर से भेंट करते समय गांधीजी ने स्त्रियों को एक उपाय बतलाया। उन्होंने कहा कि जब उनके पति मैथुन के लिये इच्छा प्रकट करें, तो उन्हें चाहिए कि वे उनकी इच्छा का विरोध करने का प्रयत्न करें। एकदम अपने पतियों को आत्मसमर्पण कर देना उचित नहीं। इस प्रकार वे स्वयं आत्मसंयमी बन सकेंगी, और अपने पतियों को भी आत्मसंयमी बना सकेंगी*।

---

* "हमारे देश में ज़रूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए। स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतली या औज़ार-मात्र बन जायँ, यह उनके कर्तव्य का अंग नहीं है।"

('हरिजन-सेवक' २ मई, १९३६)

जब पत्नी की इच्छा न हो, और पति अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ संभोग करे, तब वास्तव में, पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह अपने पति की इस इच्छा का विरोध करे। परंतु, यदि पत्नी की सहवास के लिये आंतरिक इच्छा हो—किसी बाह्य उत्तेजना या पति के प्रभाव से नहीं—स्वाभाविक रूप से, तो यह संभव नहीं कि पत्नी प्रतिकार' के अस्त्र से सफलता प्राप्त कर सकेगी। जब पति-पत्नी में काम-भाव अति उग्र रूप में जाग्रत् हो, और उनके संयोग में कोई शारीरिक प्रतिबंध न हो, तो उनकी काम-तृप्ति के मार्ग में बाधा डालनेवाली संसार में कोई शक्ति नहीं। वह समय ऐसा होता है कि पति पत्नी के हृदय से समाज का भय, नीति के उपदेश, लोकाचार और लज्जा के भाव विलीन हो जाते हैं।

अतः मेरी और मेरे साथ विश्व के विद्वान् पुरुष और विदुषी नारियों ※ की यह धारणा है कि दांपत्य जीवन में संभोग एक आवश्यकता है। यह सच है कि संभोग का प्रमुख उद्देश संतानोत्पत्ति है, परंतु केवल यही एकमात्र उद्देश नहीं। यदि संभोग का उद्देश एकमात्र संतानोत्पत्ति ही होता, तो ईश्वर कुछ ऐसी व्यवस्था अवश्य करता, जिससे अन्य अवसरों पर संभोग में बाधा पड़ती। परंतु ऐसी कोई ईश्वरीय या प्राकृतिक व्यवस्था नहीं। परंतु मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं कि विवाहित जीवन स्वेच्छाचारी जीवन का 'पासपोर्ट' है। मेरे विचार से पति-पत्नी को, संभोग का सच्चा आनंद प्राप्त करने के लिये, अधिक आत्मसंयमी होना चाहिए। जब पति-पत्नी का कुछ समय के लिये वियोग हो जाय, पत्नी अपने मातृगृह में हो, पति किसी कार्य-वश विदेश गया हो, पति किसी रोग से पीड़ित हो, पत्नी रोग-शय्या पर हो, अथवा वह गर्भवती हो, या प्रसव के उपरांत वह शिशु के पोषण में संलग्न हो, अथवा पति-पत्नी का स्वास्थ्य ठीक न हो, तो ऐसे अवसरों पर पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करना चाहिए।

※ पं० जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं—'अपनी तरफ़ से तो मैं कह सकता हूँ कि इस मामले में गांधीजी बिलकुल ग़लती पर हैं। कुछ लोगों के लिये उनकी सलाह ठीक हो सकती है, लेकिन एक व्यापक नीति के रूप में तो इसका नतीजा यही होगा कि लोग ध्वजभंग, मृगी वग़ैरह तरह-तरह के

संतान-निग्रह के कृत्रिम उपाय

दांपत्य जीवन में संभोग आवश्यक है। पति-पत्नी चाहे संतानोत्पत्ति की इच्छा करें या न करें, संभोग तो उनके लिये एक शारीरिक आवश्यकता है। अधिक संतान उत्पन्न करना भी उचित नहीं। अब समस्या यह है कि ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके प्रयोग में लाने से संभोग का आनंद तो प्राप्त हो जाय और संतानोत्पत्ति के दायित्व से वे बचे रहें।

आजकल शिक्षित-वर्ग में संतान-निग्रह के लिये कृत्रिम साधनों का अधिक प्रचार है। समस्त कृत्रिम साधनों (Contracep tives) को तीन भागों में निम्न-लिखित प्रकार से विभक्त किया जा सकता है—(१) यांत्रिक साधन (Mechanical appliancer), (२) रासायनिक उपाय (Chemicals) और (३) शल्य-क्रिया (Surgical)।

१. यांत्रिक साधन—ये दो प्रकार के हैं। एक वे यंत्र, जिनका व्यवहार केवल पुरुष करते हैं, और दूसरे वे, जिनका प्रयोग केवल स्त्रियाँ करती हैं। पुरुष के लिये एक रबर की पिशवी (French-Letter) होती है। यह रबर की एक नलिका होती है, जिसका एक सिरा बंद होता है। पुरुष संभोग के समय इसे अपने शिश्न पर पहन लेता है। संभोग के समय वीर्य और शुक्रकीट इसी पिशवी में रह जाते हैं, और वे योनि-मार्ग द्वारा गर्भाशय में नहीं पहुँच पाते। इसी कारण गर्भाधान नहीं होता। स्त्रियों के प्रयोग के लिये रबर की 'चेक-पेसरी' मिलती है। यह छोटी टोपी-सी होती है। संभोग से पूर्व इसे स्त्रियाँ योनि के भीतर गर्भाशय के मुख पर पहन लेती हैं। पुरुष मैथुन के समय कुछ नहीं पहनता। इससे वीर्य और शुक्रकीट योनि द्वारा गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर पाते। स्त्रियाँ स्पंज का भी प्रयोग करती हैं। स्पंज को जंतु-नाशक जल में डुबोकर उसके पानी को निचोड़कर योनि में रख लिया जाता है। इससे भी वीर्य गर्भाशय में नहीं जा सकता। जैसे पुरुष अपने शिश्न पर पिशवी पहन लेता है वैसे ही स्त्री पिशवी (Female Sheath) को अपनी योनि में लगा लेती है।

२. रासायनिक उपाय—उपर्युक्त यांत्रिक साधनों के अतिरिक्त ऐसे रासायनिक पदार्थ भी मिलते हैं, जिनका प्रयोग संतान-निग्रह के

लिये किया जाता है। काकोबटर (Coco-butter) जिसमें कुनैन मिली रहती है, का प्रयोग भी किया जाता है। कुछ ऐसी टिकियाँ मिलती हैं, जिन्हें संभोग से पूर्व योनि में रख लिया जाता है। इनके प्रभाव से शुक्रकीट मर जाते हैं—निष्क्रिय हो जाते हैं। रुई को निम्न-लिखित द्रवों में डुबो कर गर्भाशय के द्वार पर रखने से भी गर्भाधान नहीं होता।

(१) साबुन का सोल्यूशन (A weak soap solution)

(२) १% लेक्टिक एसिड सोल्यूशन (1 % Lactic acid Solution)

(३) ३% ग्लीसरीन में कारबोलिक एसिड सोल्यूशन (3 % solution of carbolic acid in glycerine)

(४) नीम-तेल (Camphorated Neem oil)

(५) जैतून का तेल

३. शल्य-क्रिया—संतान-निग्रह के लिये शल्य-क्रिया का प्रयोग भी किया जाता है। परंतु इसका प्रयोग वे ही पति-पत्नी करते हैं, जिन्हें जीवन-भर संतान की इच्छा नहीं होती। शुक्राणु अंडों में तैयार होते हैं, वहाँ से वीर्य-वाहक नलिकाओं द्वारा शिश्न-मार्ग में जाते हैं। अतः ऑपरेशन द्वारा यह नलिका, जो शुक्राणुओं को अंडों से शिश्न-नलिका में लाती है, काट दी जाती है। इसी प्रकार स्त्रियों की डिंब-प्रणाली (Fullopian Tube) के एक अंश को शल्य-क्रिया द्वारा काट दिया जाता है, जिससे डिंब-ग्रंथि से डिंब डिंब-प्रणाली द्वारा गर्भाशय में प्रवेश नहीं करता। फलतः गर्भ-धारण भी नहीं हो सकता।

संतान-निग्रह के उपर्युक्त समस्त उपाय पूर्णतया निर्दोष और स्वास्थ्य-प्रद नहीं हैं। पुरुष और स्त्री जिन यंत्रों का प्रयोग करते हैं, वे बहुधा रबर के बने होते हैं। इसलिये उनके फट जाने का भय है, और जब वे मैथुन के समय फट गए, तो शुक्र-कीटों का प्रवेश गर्भाशय में हो जायगा। परंतु सबसे हानिकर बात तो यह है कि इनका प्रयोग कर स्त्री-पुरुष संभोग के स्वाभाविक सुख से वंचित रहते हैं। लिंग और शिश्न का स्पर्श नहीं होता। कृत्रिम साधनों के प्रयोग से मैथुन का स्वास्थ्य पर वैसा ही घातक प्रभाव पड़ता है, जैसा हस्त-मैथुन का। अतः ये सब त्याज्य हैं।

प्राकृतिक उपाय ही स्वस्थ स्वास्थ्य के लिये हितकर हैं। इनके

प्रयोग से स्त्री-पुरुष की जननेंद्रियों के लिये हानि पहुँचती है। यदि प्रयोग करने के बाद वैज्ञानिक रीति से इंद्रियों की शुद्धि नहीं की गई, तो उनमें विष फैल जाने का भय है। अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से संतान-निग्रह के कृत्रिम उपाय हानिकर और अनुपयोगी हैं।

नैतिक दृष्टि से भी कृत्रिम उपाय वांछनीय नहीं हैं। इनके प्रयोग से व्यभिचार और दुराचारों की अधिक वृद्धि होती है। जब स्त्री-पुरुष को गर्भ-धारण का भय नहीं रहता, तब वे बिना किसी प्रकार की समाज-मर्यादा का ध्यान रक्खे अनियमित यौन-संबंध (Illegal sex-relations) स्थापित करने में स्वतंत्र और एक हद तक स्वच्छंद भी बन सकते हैं। भारत में, शिक्षित-समाज में, स्कूलों में, कॉलेजों में और विश्वविद्यालयों में—जहाँ युवक और युवतियाँ स्वतंत्रता-पूर्वक एक दूसरे के संपर्क में आते हैं, वे कृत्रिम साधनों के प्रयोग द्वारा गुप्त रूप में व्यभिचार में लीन रहते हैं। कारण, उन्हें गर्भ-धारण का भय नहीं रहता।

आर्थिक दृष्टि से भी ये साधन इतने क़ीमती हैं कि ग़रीब स्त्री-पुरुषों की आय इन्हें ख़रीदने की आज्ञा नहीं देती। नगरों में जो व्यक्ति दिन-भर परिश्रम कर आठ आना या एक रुपया पैदा कर अपने आठ-दस सदस्यों के परिवार का पालन करता है, वह ऐसे क़ीमती यंत्र कैसे ख़रीद सकेगा। फिर गाँवों की भीषण ग़रीबी तो और भी भयंकर है। ग्रामीण जनता इनका प्रयोग किसी हालत में कर सकेगी, इसमें मुझे संदेह है। ऐसी स्थिति में, जब कि स्त्री-पुरुष ब्रह्मचारी नहीं रह सकते, और कृत्रिम उपायों का प्रयोग स्वास्थ्य और समाज के लिये हानिकर है, क्या किया जाय?

आदर्श संतान-निग्रह

इसमें संदेह नहीं कि संसार के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों का एक बड़ा भाग इन कृत्रिम साधनों की विफलता और निष्फलता का अनुभव कर चुका है। इसीलिये अब कुछ प्रसिद्ध डॉक्टर ऐसे साधन के परीक्षण में लगे हुए हैं, जो प्राकृतिक हो। आदर्श संतान-निग्रह वही हो सकता है, जो पति-पत्नी की मैथुन-प्रक्रिया में कोई कृत्रिमता उत्पन्न न करते हुए सफलता-पूर्वक गर्भ-निरोध कर सके। दूसरे शब्दों में, स्त्री-पुरुष को मैथुन के समय ऐसा अनुभव न हो कि उन्होंने संतान-निग्रह के लिये किसी कृत्रिम साधन का प्रयोग किया है।

आस्ट्रिया के डॉक्टर एच्० कौनस (Dr. H. Kuans) ने और जापानी डॉक्टर ओगिनी ने प्राकृतिक संतान-निग्रह के संबंध में जो परीक्षण हाल में किए हैं, वे यद्यपि अभी परीक्षण की अवस्था में हैं, तथापि उन्होंने संसार के सामने ऐसे सिद्धांत रक्खे हैं, जो आज संसार में प्रचलित सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत हैं। इस समय सभी देशों में निम्न-लिखित सिद्धांत प्रचलित हैं—

१—डिंब-ग्रंथि से डिंब मासिक धर्म से प्रायः पाँच दिन पहले निकलता है। डिंब का मासिक धर्म से घनिष्ठ संबंध है। जब स्त्री का मासिक धर्म बंद हो जाता है, तब डिंब-रचना भी बंद हो जाती है।

२—डिंब बीस दिन अर्थात् मासिक धर्म के बाद सोलहवें दिन तक डिंब-प्रणाली में रहता है, इसी समय में गर्भ-स्थिति होती है।

३—पुरुष के शुक्र-कीट गर्भाशय या योनि में पंद्रह दिन तक जीवित रहते हैं, और उनमें गर्भाधान की शक्ति भी रहती है।

४—स्त्रियों में गर्भाधान का सबसे उत्तम समय मासिक धर्म से चार दिन पूर्व से मासिक धर्म के सोलह दिन तक का है।

५—रजोदर्शन के प्रथम दिन से सोलहवें दिन के बाद सत्रहवें दिन से तेईसवें दिन तक का समय गर्भाधान के लिये उपयुक्त नहीं।

डॉ० ओगिनी के सिद्धांत इन उपर्युक्त विश्व-विख्यात प्रचलित सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत हैं। पाँच सौ स्त्रियों पर परीक्षण करके उन्होंने निम्न-लिखित निष्कर्ष निकाले हैं—

१—रजोदर्शन से बारह से सोलह दिन पूर्व डिंब डिंब-ग्रंथि से निकलता है।

२—यदि डिंब का शुक्रकीट से संयोग न हुआ, तो वह कुछ घंटों से अधिक देर तक जीवित नहीं रहता। उसमें गर्भ-धारण की शक्ति नहीं रहती।

३—पुरुष के शुक्रकीट गर्भ य [illegible] ा में तीन दिन से अ

[illegible] क स्पष्टता से समझा [illegible] य-मित रूप से मासिक [illegible] वंधर को शुरू हुआ, तो [illegible] होगा। कौनस के सिद्धां- [illegible] दिन पूर्व डिंब-ग्रंथि से डिंब

बाहर निकलता है। अतः उन्नीस दिनों में से क्रमशः बारह और सोलह दिन निकाल दिए, तो १३ नवंबर से १७ नवंबर का समय मिलता है। यह; इन पाँच दिनों में (१३. १४. १५. १६ और १७ नवंबर) डिंब का शुक्रकीट से संयोग हो सकता है। इन्हीं दिनों में गर्भाधान होगा। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि यदि यह स्त्री १ नवंबर से ६ नवंबर और १८ नवंबर से २८ नवंबर तक सहवास करे, तो गर्भ धारण नहीं कर सकेगी।

प्रसिद्ध डॉक्टर नारमेन हेयर ने अपनी पुस्तक 'काम-विज्ञान का विश्वकोश' (Encyclopaedia of Sexual Knowledge) में उक्त सिद्धांत के संबंध में लिखा है—"सारे सिद्धांत का सार यह है कि जो दिन डॉक्टर कौनस ने गर्भ-धारण से मुक्त (Safe) बतलाए हैं, उन दिनों में गर्भाधान की संभावना कम है, परंतु भूल की संभावना इतनी अधिक है कि इस पद्धति पर विश्वास करना बुद्धि-हीनता है।"

यह प्रत्येक स्वस्थ स्त्री के अनुभव की बात है कि रजोदर्शन के समय तथा उसके बाद दस-बारह दिन तक उसे काम-वेग और दूसरे समय की अपेक्षा अधिक उग्रता से अनुभव होता है। ऋतुकाल में संभोग की इच्छा स्वाभाविक है। पशु-सृष्टि में भी यही बात देखने में आती है। जब स्त्रियाँ अधिक कामासक्त होती हैं, तभी उनके गर्भ-धारण की अधिक संभावना होती है।

डॉक्टर आर० एस० डिकिंसन (न्यूयार्क) ने 'सेफ पीरियड' (Safe period)—ऐसा समय जब गर्भ-धारण की संभावना न हो—विशेष अध्ययन किया है। डॉ० डिकिंसन का कथन है—"मास में ऐसा कोई समय नहीं, जब कुछेक स्त्रियों ने गर्भ-धारण न किया हो। रजोदर्शन से पूर्व का एक सप्ताह ऐसा समय है, जब गर्भ-धारण की सबसे कम संभावना होती है। स्त्रियाँ रजोदर्शन के समय गर्भ-धारण के योग्य होती हैं, परंतु रजोदर्शन के बाद आठ-दस दिन तक वे गर्भ-धारण के लिये सबसे अधिक योग्य होती हैं। अतः जो स्त्री-पुरुष प्राकृतिक रीति से संतान-निग्रह की इच्छा करते हैं, वे बड़ी आसानी से मासिक धर्म के पूर्व सप्ताह में मैथुन कर सकते हैं। यह निस्संदेह सत्य है कि ऐसा करते समय उनको अधिक उत्तेजना के समय संयम का पालन करना पड़ेगा। मासिक धर्म के बाद स्त्री जिस स्वाभाविक काम-वेग का अनुभव करती है, उसका दमन करना पड़ेगा।"

श्रीमहादेव देसाई ने 'हरिजन-सेवक' पत्र में श्रीमती सैंगर के एक लेख का उत्तर देते हुए लिखा है—

"वर्धा में जो बातचीत हुई, उसमें श्रीमती सैंगर ने इतने अधिक मैत्रीभाव से, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्ति से बर्ताव किया कि कुछ पूछिए नहीं। गांधीजी से उन्होंने कहा—'पर आप कोई उपाय भी तो बताइए। संयम मैं भी चाहती हूँ; संयम मुझे अप्रिय नहीं। पर शक्य संयम का ही पालन हो सकता है!' सत्य-शोधन की नम्रता से गांधीजी ने कहा—'निर्बल मनुष्यों के लिये एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल में एक मित्र की भेजी हुई पुस्तक में देखा है। उसमें यह सलाह दी है कि ऋतुकाल के बाद के अमुक दिनों को छोड़कर विषय-सेवन किया जाय।' इस तरह भी मनुष्य को महीने में दस-बारह दिन मिल जाते हैं, और संतानोत्पादन से भी बच सकता है। इस उपाय में बाक़ी के दिन तो संयम-पालन में जायँगे। इसलिये मैं इस उपाय को सहन कर सकता हूँ......*।"

इस प्रकार गांधीजी ने यह स्वीकार कर लिया है कि संतानोत्पत्ति के अतिरिक्त भी स्त्री-पुरुष को विवाहित जीवन में मैथुन की आवश्यकता है।

संतान-निग्रह के प्राकृतिक उपाय

१. रजोदर्शन के प्रथम दिन से बीसवें दिन तक पति पत्नी को सहवास न करना चाहिए।

२. संभोग रजोदर्शन से पूर्व सप्ताह में किया जाय।

३. मैथुन के समय विशेष आसनों (Attitude) का प्रयोग किया जाय †।

४. संभोग के पश्चात् तुरंत ही योनि को जल से धोना चाहिए, जिससे वीर्य गर्भाशय में न जा सके।

यदि संतान-निग्रह की इच्छा करनेवाले पति पत्नी उपर्युक्त उपायों द्वारा प्राकृतिक निग्रह करेंगे, तो इससे बड़ा लाभ होगा।

आज यहीं समाप्त करती हूँ।

तुम्हारी
इंदिरा

---

* देखिए 'अर्जुन' (साप्ताहिक) १० फ़रवरी, १९३६

† देखिए पुस्तक के अंत में परिशिष्ट ४

परिशिष्ट १

बालरोग और उपचार

बालकों की तीन अवस्थाएँ होती हैं, पहली अवस्था वह है, जिसमें बालक केवल दूध सेवन करता है। दूसरी अवस्था वह है, जिसमें वह दूध के साथ-साथ अन्न भी सेवन करता है। इसके बाद तीसरी अवस्था आती है। इस अवस्था में वह दूध नहीं पीता, अन्न, दाल-भात, खिचड़ी आदि खाता है।

१. पहली अवस्था में बालक को मा के दूध की खराबी से रोग हो जाते हैं। इसलिये मा को औषध सेवन कराने से बालक को लाभ होता है।

२ दूसरी अवस्था में मा के दूध की खराबी, मा की बीमारी अथवा बालक की बद-परहेजी से उसे रोग पैदा हो जाता है। अतः इस दशा में बालक और मा, दोनो को औषध देना चाहिए।

३. तीसरी दशा में बालक को औषध देना चाहिए।

दूध के विकार

१. वायु का विकार—अगर ताजे दूध को कांच के साफ और सफेद पात्र में डाल कर देखने से उसका रंग सांवला या लाली की झलक लिए हो, और साथ ही उसमें झागों की अधिकता हो, तथा उसका स्वाद कसैला हो, और पानी में डालने से मिल कर एक न हो जाय, बल्कि उसके ऊपर रहे, तो दूध में वायु का विकार समझना चाहिए!

ऐसा दूध अधिक मात्रा में पीने पर भी बालक का पेट नहीं भरता, मुंह तथा गले का सूखना, गला बैठ जाना, स्वर छोटा हो जाना, नींद न आना, शरीर सूख जाना, पेशाब का रुकना, पाखाना खुश्क होना आदि रोग हो जाते हैं।

२. पित्त का विकार—यदि दूध का रंग काला, पीला या तांबे के रंग के समान हो, अथवा उसे पानी में डालने से पानी पर पीले रंग की लकीरें-सी दिखाई दें, स्वाद में कुछ-कुछ खटास, कडुवाहट या चर-

परापन हो, और उसमें मुरदे की-सी या खून की-सी गंध आती हो, एवं वह गरम प्रतीत हो, तो पित्त बिगड़ा समझना चाहिए।

ऐसे दूध को पीने से बालक को पतले और पीले दस्त आते हैं, दस्तों में खून भी आ जाता है, शरीर गरम रहता है, प्यास ज्यादा लगती है, और बालक बेचैन रहता है।

३. कफ का विकार—यदि दूध बहुत सफ़ेद, बहुत मीठा और अधिक गाढ़ा अथवा चिकना हो, पानी में डालने से नीचे बैठ जाय, और उसमें घी-तेल या चर्बी की बास आती हो, तो कफ का विकार समझना चाहिए।

ऐसा दूध पीने से बच्चे को खाँसी जुकाम, आँव, बदहज़मी, दूध डालना, लार बहना और अधिक नींद आना आदि कफ के रोग होते हैं।

दुग्ध-शोधन

वायु का दोष हो,, तो मा को दशमूल का क्वाथ सेवन करावे।

पित्त का दोष हो, तो गिलोय, शतावर, पटोलपत्र, नीम की छाल, लाल चंदन और सारिवा का क्वाथ पिलावे।

कफ का दोष हो, तो हरड़, बहेड़ा, आमला, मोथा, चिरायता और कुटकी का क्वाथ पिलावे।

नीचे लिखी औषधों का क्वाथ पिलाने से दूध के सब तरह के दोष दूर हो जाते हैं—

पाठा, कुटकी, सोंठ, देवदारु, मूर्वा, मोथा, गिलोय, इंद्रजौ, चिरायता, सारिवा। इनमें से जितनी चीजें मिल सकें, उनका क्वाथ बनाकर प्रातः सायं पिलाना चाहिए।

पथ्य—मूँग की दाल, चावल, खिचड़ी, गेहूँ, जौ, खीर आदि हलकी खूराक खानी चाहिए।

दूध न पीना—यदि जन्म लेने के बाद बालक स्तन को मुँह में न दबाए, तो हरड़ और आँवले का चूर्ण बराबर लेकर, शहद और घी में मिलाकर बालक की जीभ पर मले।

नाभि-शोथ—यदि बालक की नाभि पर शोथ हो जाय, तो मिट्टी के ढले को आग में भली भाँति गरम करके उस पर दूध छिड़के। ऐसा करने से जो भाप निकले, उससे बालक की नाभि को पसीना दिलावे।

नाभि-पाक—नाभि पक जाने पर लाल चंदन का महीन चूर्ण नाभि पर बुरका दें, या घी में मिलाकर लगावें।

गुदापाक—रसौत को पानी में घिसकर लेप करे, और बच्चे तथा उसकी मा को पिलावे।

मृगी—दिमाग़ी कमजोरी और बलग़म की अधिकता से बालकों को मृगी के दौरे आने लगते हैं। पेट में कीड़े पड़ जाने, क़ब्ज़ होने और दाँतों के निकलने की तकलीफ़ से भी मृगी के दौरे आने लगते हैं। दौरे के समय बच्चे के हाथ-पाँव ऐंठते हैं, आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं, बच्चा बेहोश हो जाता है, मल-मूत्र रुक जाता है, जँभाई आने लगती है, और कभी-कभी मुँह से झाग आते हैं।

पेट में क़ब्ज़ हो, तो निम्न-लिखित औषध दें—

एलवा १ तोला, उसारेवंद ३ माशे, मस्तगी ६ माशे, इन सबों को लेकर, गुलाब के अर्क़ में घोटकर मूँग के बराबर गोलियाँ बनावें। अगर बालक दूध पीता हो, तो मा के दूध में बालक को दें।

दौरे के समय बालक के हाथ-पाँव पकड़ लें, लौटने न दें, आँखों पर हाथ रख लें, कपड़ों की पोटली से हाथ-पैरों को घिसें। मक्खन को गरम पानी में मिलाकर शरीर और हाथ-पैरों पर मलें। यदि मक्खन न हो, तो गुलरोग़न का प्रयोग करें।

बालक की मा को बृहद्वातचिंतामणि-रस प्रातः-सायं घी और शहद में मिलाकर सेवन करावें।

अहिपूतना—(गुदा पर फुंसी व घाव) शंख, सुरमा और मुलैठी पीसकर लेप करें।

दाँत निकलना—धाय के पुष्प और पीपल के चूर्ण को शहद में मिलाकर मसूड़ों पर मलना चाहिए।

बच्चों के गले में बिजली का तावीज़ डालना भी लाभप्रद है।

ज्वर—मा को हलका भोजन देना चाहिए। एक वक़्त खाना न खाय। बच्चे को कम दूध पिलाना चाहिए।

नागरमोथा, हरड़, नीम की छाल, पटोलपत्र, मुलैठी का क्वाथ* मा को पिलावे।

---

* क्वाथ बनाने की विधि—सब औषध लेकर उन्हें अधकुटा करके २ तोला ले और ३२ तोला पानी में औटावे। जब ८ रह जाय, तब छानकर पिलाना चाहिए। पकाते समय बर्तन को ढकना न चाहिए।

ज्वरातिसार—यदि ज्वर के साथ दस्त हो, तो मोथा, पीपल, अतीस और काकड़ासींगी बराबर लेकर, चूर्ण बनाकर शहद में मिलावे। एक-एक माशा तीन-चार बार मा को सेवन करावे।

अतिसार (दस्त)—बेलगिरी, धाय के फूल, नेत्रवाला, लोध और गजपीपल, इनका चूर्ण शहद में मिलाकर सेवन करावे।

रक्तातिसार—मोचरस, मजीठ, धाय के फूल, कमल-केशर और चौलाई की जड़ बराबर लेकर ६४गुने पानी में पकावे, और इस पानी से खीर, सागूदाना, चावल आदि बनाकर खिलावे। इन चीजों का क्वाथ मा और बच्चे को भी पिलावे।

खाँसी—मोथा, अतीस, काकड़ासींगी, वासे के पत्ते और पीपल के चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से सब प्रकार की खाँसी मिटती है।

हिचकी—एक-एक रत्ती कुटकी का चूर्ण शहद में मिलाकर कई बार बालक को चटावे।

वमन—(१) धाय के फूल, बेलगिरी, धनिया, लोध, इंद्रजौ और नेत्रवाला बराबर लेकर, चूर्ण करके शहद के साथ चटाने से वमन का नाश होता है।

(२) जामुन या आम की छाल पीसकर नाभि, हृदय और तलवे पर लेप करने से वमन और अतिसार का नाश होता है।

दूध डालना—आम की गुठली, धान की खील और सेंधा नमक का चूर्ण शहद में मिलाकर चटावे।

अफारा—सेंधा नमक, सोंठ, भारंगी, इलायची और भुनी हींग के चूर्ण को शहद में मिलाकर चटावे।

पेशाब बंद होना—पीपल, काली मिर्च, छोटी इलायची के बीज, मिसरी और सेंधा नमक का चूर्ण शहद में मिलाकर चटावे।

—'स्वास्थ्य-दर्पण' से*

---

* देखिए 'स्वास्थ्य-दर्पण' (मासिक पत्र) संपादक, वैद्य [illegible] गुप्त, [illegible], बिजनौर, अगस्त, सन् १९१९ ई०

परिशिष्ट २

स्तनों में दुग्ध-वृद्धि

जिन माताओं के स्तनों में कम दूध हो, उन्हें पौष्टिक भोजन, घी, दूध आदि का यथेष्ट मात्रा में सेवन करना चाहिए। निम्न-लिखित उपायों से भी दुग्ध-वृद्धि हो सकती है—

(१) घी में भुना सफ़ेद जीरा भोजन में सेवन करना चाहिए।

(२) एक या दो तोले शतावर दूध में पीसकर पीना चाहिए।

(३) बड़ी पीपल दूध में पकाकर पिए।

(४) दूध-चावल अधिक खाना चाहिए।

(५) शतावर, चावल और जीरा ३-३ माशे लेकर, गाय के दूध में पीसकर, मिसरी डालकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए।

प्रदर

प्रदर-रोग स्त्रियों को अधिकतर हो जाता है। यह दो प्रकार का है—१ श्वेत-प्रदर, २ रक्त-प्रदर।

लक्षण—श्वेत-प्रदर—इस रोग का संबंध गर्भाशय की ग्रीवा और गर्भाशय की सूजन से है। जब गर्भाशय की ग्रीवा पर सूजन होती है, तब एक प्रकार का श्वेत और लाल पदार्थ योनि-मार्ग से बहता है। यह रोग की प्रारंभिक अवस्था है; परंतु जब गर्भाशय में शोथ आ जाती है, तब यह श्वेत, तरल पदार्थ, पीला या गुलाबी रंग का गाढ़ा हो जाता है। कमर तथा हाथ-पैरों में दर्द, नाभि के आस-पास दर्द व भारीपन, हाथ-पैरों के तलवों में जलन होती है। पाचन-क्रिया अच्छी नहीं रहती। क़ब्ज़ बना रहता है; मासिक धर्म देर से होता है।

कारण—श्वेत-प्रदर अति मैथुन, बार-बार गर्भ-पात, मासिक धर्म का अवरोध, बाल-मैथुन, तेल-खटाई और मसालेदार भोजन अधिक प्रयोग करने से होता है।

चिकित्सा—(१) सुपारीपाक प्रातः-सायं गर्म दूध के साथ १-१ सेवन करना चाहिए। एक सेर गर्म पानी में २ माशे फिटकरी

मिलाकर 'कौंडीज फ्लुइड' (क्षार की पिचकारी) से योनि की सफाई करनी चाहिए। उपर्युक्त दवा का सेवन दो माह और पिचकारी का प्रयोग तीन दिन करना चाहिए। मासिक धर्म के समय दोनों प्रयोग बंद कर देना चाहिए। यदि योनि में खुजली हो, तो प्रथम सप्ताह में १ सेर गरम पानी में १ माशा कच्चा सुहागा या बोरिक एसिड मिलाकर पिचकारी करनी चाहिए।

(२) केले का पका गूदा, गो-घृत और मिश्री। तीनों को बराबर-बराबर पकाकर खूब मथना चाहिए। यह मिला हुआ पदार्थ १ पाव, दालचीनी १॥ तोला, लोध १ तोला, धाय के फूल ४ माशे, बड़ी इलायची ४ माशे, सोंठ १ तोला, माजूफल ६ माशे। इन सब औषधियों को कपड़छानकर उसमें मिलाकर मात्रा दो तोला।

(३) पुष्यानुग-चूर्ण—पाठा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, पाषाणभेद, रसौत, मोचरस, पद्मकेसर, अतीस, मोथा, बेलगिरी, लोध, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, पीपल, मुनक्का, लाल चंदन, श्योनाक की छाल, इंद्रजौ, अनंतमूल, धाय के फूल, मुलहठी, अर्जुन की छाल। सब बराबर लेना चाहिए। इनका कपड़छान चूर्ण बनावे। मात्रा ६ माशे शहद से चाटे। यह सब प्रकार के प्रदरों का प्रसिद्ध योग है।

रक्त-प्रदर—रक्त-प्रदर में योनि से रक्त के समान लाल रंग का तरल पदार्थ निकलता है।

कारण—मूत्रकृच्छ्र, उपदंश, मासिक धर्म के जारी रहते समय मैथुन अथवा मासिक धर्म के समय परिश्रम का कार्य, अधिक मैथुन, गर्भ-स्राव होने पर गर्भ का कोई भाग गर्भाशय में लगा रहे, गर्भपात, पित्त की वृद्धि, रक्ताधिकता, गर्भाशय का जख्म और गर्भाशय के कैंसर के कारण रक्त-प्रदर होता है।

चिकित्सा—१. गर्भ-स्राव के बाद यदि रक्त गिर रहा हो, तो उसे बंद न करना चाहिए। इसमें दशमूलारिष्ट दो-दो तोले दिन में ३ बार सेवन करावे।

२. सोंठ, छोटी पीपल, चव्य, चीते की जड़, अजवायन, गजपीपल सब मिलाकर २ तोले ले और अधकुटी करे। फिर ८ छटांक पानी में पकावे। जब २ छटांक रह जाय, तो आधी छटाँक गुड़ मिलाकर पी लेना चाहिए। इससे गर्भाशय में अटका हुआ गर्भखंड बाहर निकलकर रक्त गिरना बंद हो जायगा।

३. यदि रक्त शुद्ध गिरता हो, तो अशोकारिष्ट २ तोले दिन में तीन बार सेवन करना चाहिए।

४. सत्त्व-गिलोय ६ माशे, वेल अंजवार १ तोला, पीपल की लाख १ तोला, अनार-कली १ तोला, आम-गुठली की गिरी १ तोला, अर्जुन की छाल १ तोला, वंशलोचन ६ माशे, सबको कूट चूर्ण बनावे। साढ़े चार माशे २ तोले पानी के साथ दिन में तीन बार सेवन करे।

मासिक धर्म

मासिक धर्म का न होना—यदि मासिक धर्म १२ वर्ष से १६ वर्ष की आयु तक न हो, तो किसी योग्य लेडी डॉक्टर को दिखलाना चाहिए।

कष्ट के साथ मासिक धर्म होना—रजः-प्रवर्तक वटी २-२ प्रातःसायं पानी से अथवा फलघृत ६-६ माशे मिसरी मिलाकर प्रातःसायं सेवन करना चाहिए।

जारी हो जाने पर मासिक धर्म बंद हो जाना—यदि गर्भाशय और डिंब-ग्रंथियों के शोथ के कारण मासिक धर्म बंद है, तो इसके लिये अशोकघृत अशोकारिष्ट, रज-शोधक वटी, पंच-कोल-घृत प्रातः सायं क्रमशः ६ माशे से १ तोला सेवन करना चाहिए।

मासिक धर्म-अवरोध—३-४ छुहारों को समान दूध-पानी में उबाल-कर आधा रह जाने पर पीना चाहिए।

हिस्टीरिया

कारण—मानसिक कष्ट, वासना युक्त विचार, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, ऋतु-दोष, गर्भाशय के विशेष स्नायु-मंडल की उत्तेजना आदि के कारण स्त्रियों को—विशेषतया नवयुवतियों को यह रोग हो जाता है।

लक्षण—रोग आरंभ होने से पूर्व पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। शौच ठीक नहीं होता। प्रायः दो-दो, तीन-तीन बार शौच जाना पड़ता है। कोई रोगिणी दो-तीन दिन शौच नहीं जाती। चित्त अत्यंत खिन्न और अशांत रहता है। मन में बुरे विचार रहते हैं। ऋतु ठीक समय नहीं होता। इस रोग का आक्रमण मासिक धर्म के पहले या बाद में होता है। कूलों में पीड़ा होने लगती है। आलस्य और निर्बलता छा जाती है। नेत्रों के सामने अँधेरा छा जाता है। दिल की धड़कन बढ़

जाती है। रोगिणी को हँसने और रोने की इच्छा होती है। कभी चीख-कर रोने लगती है तो कभी ठठाकर हँसने लगती है। स्त्री को मैथुन की प्रबल इच्छा होती है*।

हिस्टीरिया चिकित्सा—इस रोग की योग्य लेडी डाक्टर से चिकित्सा करानी चाहिए। इसे अक्सर मूर्ख स्त्रियाँ भूत प्रेत या चुड़ैल सिर आ जाना समझती हैं। परन्तु यह उनकी अज्ञानता है।

१. हिप-बाथ—रोगिणी को टब में बैठकर शीतल जल से स्नान करना चाहिए। जाँघें पानी में डूबी रहें, और एक कोख से दूसरी कोख तक भीगे तौलिया से मलना चाहिए।

२. सिट्ज़ बाथ—टब पर एक लकड़ी का तख्ता रखकर उस पर रोगिणी को बैठ जाना चाहिए। टब में पानी इतना भर दें कि तख्ते तक पहुँच जाय। रोगिणी इस प्रकार पटरे पर बैठे कि पाँव टब के बाहर रहें। फिर मुलायम कपड़े को पानी में डुबोकर योनि के बाहरी भाग को धीरे-धीरे धोना चाहिए। स्नान का जल ठंडा अधिक हो। जल शरीर के और भाग में न लगे।

यह स्नान मासिक धर्म के समय न करना चाहिए।

स्नान के तीन घंटे पूर्व या बाद में कुछ न खाना चाहिए। भोजन सात्त्विक किया जाय। खट्टा, चरपरा, कड़ुवा और मसालेदार भोजन न करे।

३. मिट्टी का लेप—पीली मिट्टी को जल में भिगोकर लेप-सा बना ले। मोटे कपड़े या टाट पर इस मिट्टी को गाढ़ा फैलावे। फिर प्रातः-काल शौचादि से निवृत्त होकर इस मिट्टी को नाभि के दो अंगुल ऊपर से पेट के नीचे भाग तक लगा ले और आध घंटे तक लगाए रहे।

यह प्रयोग पाचन-शक्ति को बढ़ाता है, और उदर के विजातीय द्रव्यों को निकाल बाहर करता है।

---

* आयुर्वेदाचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री की सम्मति यह है—"यह रोग प्रायः बड़े घरों में उन स्त्रियों में देखा जाता है, जो सुंदर और कम उम्र हैं। या तो वे विधवा हो गई हैं; और कामेच्छा प्रबल होने पर उन्हें पुरुष नहीं मिलते, या उनके पुरुष निर्बल या नपुंसक हैं, उनके सहवास से उनकी लालसा प्रबल तो हो ही जाती है, पर तृप्ति नहीं होती।"

कृत्रिम कामोन्माद

योनि की शुद्धि न करने से योनि के भीतर छोटे-छोटे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी सरसराहट से स्त्री की योनि में तीव्र और विह्वल करनेवाली उत्तेजना हो जाती है। ऐसी स्त्री को मैथुन की बड़ी प्रबल इच्छा रहती है।

उपचार—१. चार से ६ रत्ती कपूर पान में रखकर खिलाना चाहिए। २. योनि को पिचकारी से साफ करना चाहिए, और १ तोला फिटकरी और ॥ तोला कपूर को पीसकर पोटली बनाकर योनि में रख लेना चाहिए। इससे लाभ होगा।

केश-तैल

हरे आँवलों का रस १ पाव १ सेर सफेद तिल्ली के तैल में मिलाकर अग्नि पर पका लीजिए। जब तेल-मात्र रह जाय, तब उसमें १ तोला कपूर, १ तोला केशर, १ तोला पानड़ी आदि सुगंधित पदार्थ मिलाकर काम में लाइए। इस तैल से बाल काले और घने रहेंगे। टूटने से बचेंगे। दिमाग में ठंडक रहेगी।

परिशिष्ट ३

वंध्यापन

जो स्त्री गर्भ-धारण नहीं कर सकती, उसे वंध्या कहते हैं। गर्भ-धारण पति-पत्नी के समागम का फल होता है। यदि पति में कोई दोष न हो, और गर्भ-धारण न हो, तो यह समझना चाहिए कि स्त्री वंध्या है। ऐसा देखने में आया है कि विवाह के दो, तीन, चार या पाँच वर्ष के बाद बहुतेरी स्त्रियों के गर्भ-धारण होता है। परंतु यदि विवाह के दो वर्ष तक पति-पत्नी की इच्छा होने पर भी गर्भ-धारण न हो, तो पत्नी की डॉक्टरी अवश्य करानी चाहिए।

गर्भ-धारण न होने के निम्न-लिखित कारण हो सकते हैं—

१. पति या पत्नी की जननेंद्रियों की रचना में दोष।

२. पति के शुक्र और पत्नी के रज में दोष।

३. डिंब और शुक्रकीट के संयोग में अवरोध।

जो स्त्रियाँ गर्भ-धारण के अयोग्य होती हैं, वे दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं। एक तो वे स्त्रियाँ हैं, जो मासिक धर्म से नहीं होतीं, अथवा जिनके गर्भाशय या डिंब-ग्रंथि नहीं होती। ऐसी स्त्रियों को वध्या कहते हैं। दूसरी श्रेणी में वे स्त्रियाँ आती हैं, जिनको मासिक धर्म होता है, और गर्भाशय तथा डिंब-ग्रंथि भी होती है; परंतु जननेंद्रिय-संबंधी दोषों के कारण गर्भ-धारण में अयोग्य रहती हैं। ऐसी स्त्रियों को 'नपुंसक' स्त्री कहा जा सकता है।

जो स्त्रियाँ अधिक मैथुन में रत रहती हैं अनियमित आहार करती हैं, अथवा जिन्हें मासिक धर्म ठीक नहीं होता, उन्हें योनि-संबंधी निम्न-लिखित रोग हो जाते हैं—

१. उदावर्ता—जिसकी योनि से झागदार मासिक धर्म बहुत पीड़ा से होता है।

२. वंध्या—जिसके गर्भाशय नहीं होता, और न जिसे रजोदर्शन होता है।

३. विलुप्ता—जिसकी योनि में सदा पीड़ा होती रहे।

४. परिलुप्ता योनि—मैथुन के समय छींक या डकार आवे, और स्त्री उसे रोक ले, तो योनि सूज जाती है, और बड़ी पीड़ा होती है। स्त्री की कमर, कोख और पीठ में पीड़ा होने लगती है। योनि से नीला-पीला पानी बहने लगता है।

५. वातला—जिसकी योनि सख्त, खुरदरी और पीड़ा करनेवाली हो।

६. लोहिताक्षरा—जिसकी योनि में से बहुत गर्म मासिक धर्म होता हो।

७. प्रस्रंसिनी—जिसकी योनि अपने स्थान से विचलित हो जाय।

८. वामिनी—जिस स्त्री को योनि से गर्भाशय में पहुँचा वीर्य वहाँ से निकल जाय।

९. पुत्रघ्नी—जिस स्त्री को गर्भस्थिति हो जाने के बाद गर्भ-पात से गर्भनाश हो जाय।

१०. पित्तला—जिसकी योनि में दाह, जलन, योनि-पाक और पीड़ा हो।

११. अत्यानंदा—जो स्त्री संभोग की अधिक इच्छा करे।

१२. कर्णिनी—जिसकी योनि में अपरिपक्वावस्था में गर्भ-स्थिति के कारण गाँठ पैदा हो जाय।

१३. आनंदचरणा—जो स्त्री संभोग के समय शीघ्र ही पुरुष से पूर्व स्खलित हो जाय।

१४. अतिचरणा—अत्यंत मैथुन के कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुप्ति और पीड़ा उत्पन्न कर देती है।

१५. अचरणा—योनि को न धोने से उसमें एक प्रकार के अदृश्य कीटाणु पड़ जाते हैं। यह खुजली पैदा करते हैं। स्त्री मैथुन की अधिक इच्छा करती है।

१६. अरजस्का—जिसका रजोधर्म बंद हो जाय।

१७. प्राक्चरणा—अत्यंत बाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जंघा, ऊरु में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है।

१८. श्लेष्मला—कफकारक पदार्थों के सेवन की अधिकता से कफ बढ़कर स्त्री की योनि में कफज रोग पैदा कर देता है। योनि में शीतलता, चिकनापन और खुजली पैदा हो जाती है।

१९. अंतर्मुखी—भोजन करने के पश्चात् तुरंत ही विपरीत आसन से मैथुन करने के कारण गर्भाशय का मुख टेढ़ा हो जाता है।

२०. सूचीमुखी—गर्भ में कन्या हो, उस समय यदि गर्भवती मैथुन करे, तो वायु रुष्ट होकर गर्भस्थ कन्या की योनि को दूषित करके उसके योनि-द्वार को छोटा कर देती है।

२१. शुष्का योनि—मैथुन के समय जब स्त्री मल-मूत्र के वेगों को रोक लेती है, तब वायु कुपित होकर मल-मूत्र को रोककर योनि को शुष्क कर देती है।

२२. महायोनि—विपरीत आसन से मैथुन के कारण स्त्री की वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनि-मुख को बिगाड़ देती है, गर्भाशय और योनि का मुख अधिक खुल जाता है। उससे झागदार, रूखा, पीड़ा करता हुआ आर्तव निकलता है।

उपर्युक्त योनिज रोगों का उपचार योग्य लेडी डॉक्टर से कराना चाहिए।

परिशिष्ट ४

संतान-निग्रह के इच्छुक पति-पत्नी को निम्न-लिखित संभोग-आसनों का प्रयोग करना चाहिए—

१. पत्नी पीठ के बल चित पलँग पर लेट जाय। अपने घुटनों को ऊँचा उठा ले, और उसके पैर नितंबों की ओर आ जायँ। जंघाओं को चौड़ा कर ले। अब पति जंघाओं के बीच में बैठकर अपने शिश्न को योनि में प्रवेश करे, और उसके पेट पर लेट जाय। अब स्त्री अपने पैर सीधे कर ले, और अपनी जंघाओं को भी मिला ले।

२. यदि उपर्युक्त आसन के करते समय नितंबों के नीचे मज़बूत, कड़ा तकिया लगा लिया जाय, तो और भी श्रेष्ठ होगा।

३. पति को पलँग या फ़र्श पर पलथी मारकर बैठ जाना चाहिए। पत्नी को उसकी ओर अपना मुख करके ऐसे बैठना चाहिए कि उसका सीधा पैर पति के बाएँ और उसका बायाँ पैर पति के दाएँ पार्श्व में रहे। इस आसन की विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं—

(१) इस आसन में स्त्री को बहुत शीघ्र आनंद प्राप्त होता है।

(२) पुरुष का स्तंभन अधिक देर तक होता है।

(३) स्त्री स्वेच्छानुसार गति कर सकती है।

(४) वीर्य योनि से बाहर निकल जाता है। गर्भाशय के मुख पर वीर्यपात नहीं होता।

—वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से

परिशिष्ट ५

गर्भाधान

गर्भाधान के लिये सर्वश्रेष्ठ आसन निम्न-लिखित हैं। जो स्त्रियाँ गर्भ स्थिति की इच्छा करती हों, उन्हें इसी का प्रयोग करना चाहिए।

स्त्री पलँग पर अपने पैर सीधे करके चित लेट जाय, और घुटने समेट ले, जंघाओं को चौड़ाकर ले। परंतु पैरों के तलवे पलँग से चिपटे रहें, पुरुष स्त्री की जंघाओं के बीच में बैठकर शिश्न प्रवेश करे। पुरुष के पैर और घुटने स्त्री के पैर और जंघाओं के बीच में रहें। पुरुष स्त्री के पेट पर अधर लेटा रहे।

कभी-कभी पति-पत्नी की गर्भाधान के लिये अति उत्कट अभिलाषा होती है, और वे शरीर से भी पूर्ण स्वस्थ होते हैं, उनमें कोई जननेंद्रिय अथवा डिंब या वीर्य-दोष नहीं होता, परंतु फिर भी गर्भाधान नहीं होता। इसका कारण यह है कि स्त्री की योनि से एक प्रकार का तरल द्रव (Acid Secretion) प्रवाहित होता रहता है। इससे स्त्री को कोई हानि नहीं होती, और उसे इसका अनुभव भी नहीं होता। परंतु इस तरल द्रव से शुक्रकीट निर्जीव और निष्क्रिय बन जाते हैं। अतः गर्भ-धारण के लिये यह आवश्यक है कि मैथुन से पूर्व सोडियम बाइ-कारबोनेट को पानी में घोलकर उससे योनि में पिचकारी दे दे।

स्त्री की योनि के आंतरिक द्वार (गर्भाशय की ग्रीवा) पर कभी-कभी श्लेष्मा (mucus) अधिक जमा हो जाता है। इससे डिंब और वीर्य-कीट के संयोग में बाधा पड़ जाती है। अतः वीर्यपात के साथ अथवा उसके बाद योनि में अति शक्तिप्रद गति होनी चाहिए।

—वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से

परिशिष्ट ४

संतान-निग्रह के इच्छुक पति-पत्नी को निम्न-लिखि
आसनों का प्रयोग करना चाहिए—

१. पत्नी पीठ के बल चित पलँग पर लेट जाय। अपने
ऊँचा उठा ले, और उसके पैर नितंबों की ओर आ जायँ।
चौड़ा कर ले। अब पति जंघाओं के बीच में बैठकर अपने
योनि में प्रवेश करे, और उसके पेट पर लेट जाय। अ
पैर सीधे कर ले, और अपनी जंघाओं को भी मिला ले।

२. यदि उपर्युक्त आसन के करते समय नितंबों के नी
कड़ा तकिया लगा लिया जाय, तो और भी श्रेष्ठ होगा।

३. पति को पलँग या फ़र्श पर पलथी मारकर बैठ जा
पत्नी को उसकी ओर अपना मुख करके ऐसे बैठना चाहि
सीधा पैर पति के बाएँ और उसका बायाँ पैर पति के द
रहे। इस आसन की विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं—

(१) इस आसन में स्त्री को बहुत शीघ्र आनंद प्राप

(२) पुरुष का स्तंभन अधिक देर तक होता है।

(३) स्त्री स्वेच्छानुसार गति कर सकती है।

(४) वीर्य योनि से बाहर निकल जाता है। गर्भ
पर वीर्यपात नहीं होता।

—वात्स्यायन के 'द